TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

प्रवेशिका पद्यावली

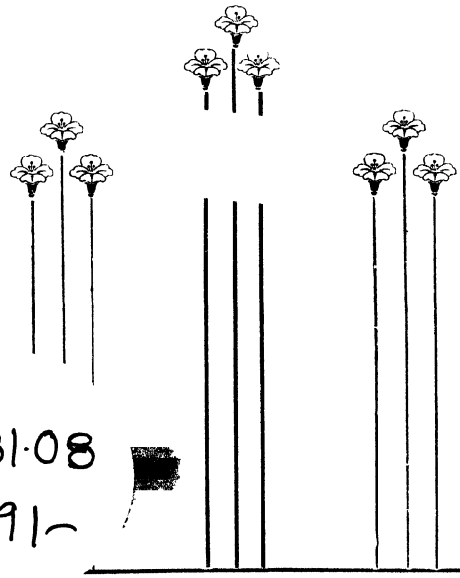

H81.08
P91-

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182698
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—707—25-4-81—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.08 P91 Accession No. P.G. H6291

Author प्रवेशिका पद्यावली 1930.

Title

This book should be returned on or before the date last marked below

प्रवेशिका पद्यावली

पहला भाग

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रवेशिका
परीक्षा के लिए स्वीकृत]

१९३०

Published by K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd.
Allahabad.

Printed by E. Hall
at The Belvedere Press,
Allahabad.

सूची

(१) सती-मोह और पार्वती-विवाह		...	१—५०
(२) रहीम के दोहे	...	...	५१—५५
(३) कबीर के दोहे	...	...	५६—६१
(४) सूरदास के पद	...	...	६२—७९
(५) बिहारी के दोहे	...	...	८०—८२
(६) परशुराम-संवाद	...	...	८३—९४
(७) पृथ्वीराज-प्रयाण	...	...	९५—९९
(८) भारत-महिमा	...	...	१००—१०४

प्रवेशिका पद्यावली

पहला भाग

(१) सती-मोह और पार्वती-विवाह

[तुलसीकृत रामायण से]

चौ०—एक बार त्रेता जुग माहीं।
संभु गये कुंभज ऋषि पाहीं॥
संग सती जगजननि भवानी।
पूजे ऋषि अखिलेश्वर जानी॥
रामकथा मुनिवर्य बखानी।
सुनी महेस परम सुख मानी॥
ऋषि पूछी हरिभगति सुहाई।
कही संभु अधिकारी पाई॥
कहत सुनत रघुपति-गुन-गाथा।
कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥
मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी।
चले भवन सँग दच्छकुमारी॥

तेहि अवसर भंजन महिभारा।
हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥
पिताबचन तजि राज उदासी।
दंडकवन बिचरत अबिनासी॥

दोहा०—हृदय बिचारत जात हर, केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गये जान सब कोइ॥ १॥

सो०—संकर उर अति छोभु, सती न जानइ मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु, मन डरु लोचन लालची॥ २॥

चौ०—रावन मरन मनुजकर जाँचा।
प्रभु बिधि बचन कीन्ह चह साँचा॥
जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा।
करत बिचारु न बनत बनावा॥
यहि बिधि भये सोचबस ईसा।
तेही समय जाइ दससीसा॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा।
भयउ तुरतै सोइ कपट कुरंगा॥
करि छल मूढ़ हरी बैदेही।
प्रभुप्रभाउ तस बिदित न तेही॥
मृग बधि बंधु सहित प्रभु आये।
आस्रमु देखि नयन जल छाये॥
बिरहबिकल नर इव रघुराई।
खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥

कबहूँ जोग बियोग न जाके।
देखा प्रगट बिरहदुख ताके॥

दो०—अति बिचित्र रघुपतिचरित, जानिहिँ परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोहबस, हृदय धरहिं कछु आन॥ ३॥

चौ०—संभु समय तेहि रामहिं देखा।
उपजा हिय अति हरषु बिसेखा॥
भरि लोचन छबिसिंधु निहारी।
कुसमय जानि न कीन्हचिन्हारी॥
जय सच्चिदानंद जगपावन।
अस कहि चले मनोजनसावन॥
चले जात सिव सती समेता।
पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥
सती सो सदा संभु कै देखी।
उर उपजा संदेहु बिसेखी॥
संकर जगतबंद्य जगदीसा।
सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥
तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा।
कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भये मगन छबि तासु बिलोकी।
अजहुँ प्रीति उर रहित न रोकी॥

दो०—ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत बेद॥ ४।

चौ०—विष्णु जो सुरहित नर-तनु-धारी।
सो सर्वज्ञ जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अज्ञ इव नारी।
ज्ञानधाम श्रीपति असुरारी॥
संभुगिरा पुनि मृषा न होई।
सिव सर्वज्ञ जानु सब कोई॥
अस संसय मन भयउ अपारा।
होइ न हृदय प्रबोध-प्रचारा॥
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी।
हर अंतरजामी सब जानी॥
सुनहि सती तव नारिसुभाऊ।
संसय अस न धरिय उर काऊ॥
जासु कथा कुंभज रिषि गाई।
भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा।
सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥

छंद—मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति मायाधनी।
अवतरेउ अपने भगतहित निजतंत्र निज रघु-कुल-मनी॥

सो०—लाग न उर उपदेसु, जदपि कहेउ सिव बार बहु।
बोले बिहँसि महेसु, हरि-माया-बलु जानि जिय॥ ५॥

चौ०—जौ तुम्हरे मन अति संदेहू।
तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं।
जब लगि तुम ऐहहु मोहि पाहीं॥
जैसें जाइ मोह भ्रम भारी।
करेहु सेा जतन बिबेक बिचारी॥
चली सती सिव आयसु पाई।
करइ बिचारि करउँ का भाई॥
इहाँ संभु अस मन अनुमाना।
दच्छसुता कहँ नहिं कल्याना॥
मोरेहु कहे न संसय जाहीं।
बिधि बिपरीत भलाई नाहीं॥
होइहि सोइ जो राम रचि राखा।
को करि तरक बढ़ावइ साखा॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा।
गई सती जहँ प्रभु सुखधामा॥

दो०—पुनि पुनि हृदय बिचारि करि, धरि सीता कर रूप।
आगे होइ चलि पंथ तेहि, जेहि आवत नरभूप॥६॥

चौ०—लछिमन दीख उमाकृत बेषा।
चकित भये भ्रम हृदय बिसेषा॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा।
प्रभुप्रभाव जानत मतिधीरा॥

सतीकपटु जानेउ सुरस्वामी।
सब दरसी सब अंतरजामी॥
सुमिरत जाहि मिटइ अज्ञाना।
सोइ सर्वज्ञ राम भगवाना॥
सती कीन्ह चह तहहुँ दुराऊ।
देखहु नारि-सुभाउ प्रभाऊ॥
निज मायाबल हृदय बखानी।
बोले बिहँसि राम मृदुबानी॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू।
पितासमेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ वृषकेतू।
बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

दो०—रामबचन मृदु गूढ़ सुनि, उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं, चली हृदय बड़ सोचु॥७॥

चौ०—मैं शंकर कर कहा न माना।
निज अज्ञान राम पर आना॥
जाइ उतरु अब देइहउँ काहा।
उर उपजा अति दारुन दाहा॥
जाना राम सती दुख पावा।
निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा॥
सती दीख कौतुक मग जाता।
आगे राम सहित श्री-भ्राता॥

फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा।
सहित बंधु सिय सुंदर बेखा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना।
सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥
देखे सिव बिधि विष्णु अनेका।
अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा।
बिबिध बेष देखे सब देवा॥

दो०—सती बिधात्री इंदिरा, देखी अमित अनूप।
जेहि जेहि बेष अजादि सुर, तेहि तेहि तन अनरूप॥८॥

चौ०—देखे जहँ तहँ रघुपति जेते।
सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते॥
जीव चराचर जो संसारा।
देखे सकल अनेक प्रकारा॥
पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेखा।
रामरूप दूसर नहिं देखा॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे।
सीता सहित न बेष घनेरे॥
सोइ रघुबर सोइ लछिमन सीता।
देखि सती अति भई सभीता॥
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं।
नयन मूँदि बैठी मग माहीं॥

बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी।
कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी॥
पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा।
चली तहाँ जहँ रहे गिरीसा॥

दो०—गई समीप महेश तब, हँसि पूछी कुसलात।
लीन्हि परीछा कवन बिधि, कहहु सत्य सब बात॥६॥

चौ०—सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ।
भयबस सिव सन कीन्ह दुराऊ॥
कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं।
कीन्हि प्रणाम तुम्हारिहि नाईं॥
जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई।
मोरे मन प्रतीति अस सोई॥
तब शंकर देखेउ धरि ध्याना।
सती जो कीन्ह चरित सब जाना॥
बहुरि राममायहि सिरु नावा।
प्रेरि सतिहिं जेहि झूठ कहावा॥
हरिइच्छा भावी बलवाना।
हृदय विचारत संभु सुजाना॥
सती कीन्ह सीता कर बेषा।
सिव उर भयउ विषाद बिसेषा॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती।
मिटइ भगतिपथ होइ अनीती॥

दो०—परम पुनीत न जाइ तजि, किये प्रेम बड़ पाप।
प्रगटि न कहत महेसु कछु, हृदय अधिक संताप ॥१०॥

चौ०—तब शंकर प्रभुपद सिरु नावा।
सुमिरत राम हृदय अस आवा॥
एहि तन सतिहिं भेट मोहि नाहीं।
सिव संकल्प कीन्ह मन माँहीं॥
अस बिचारि शंकर मतिधीरा।
चले भवन सुमिरत रघुबीरा॥
चलत गगन भइ गिरा सुहाई।
जय महेस भलि भगति दृढ़ाई॥
अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना।
राम-भगत समरथ भगवाना॥
सुनि नभगिरा सती उर सोचा।
पूछा सिवहिं समेत सकोचा॥
कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला।
सत्यधाम प्रभु दीन दयाला॥
जदपि सती पूछा बहु भाँती।
तदपि न कहेउ त्रिपुर आरती॥

दो०—सती हृदय अनुमान किय, सब जानेउ सर्वज्ञ।
कीन्ह कपट मैं संभु सन, नारि सहज जड़ अज्ञ ॥११॥

सो०—जल पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होइ रस जाइ, कपट खटाई परत पुनि ॥१२॥

चौ०—हृदय सोच समुझत निज करनी ।
चिंता अमित जाइ नहिं बरनी ॥
कृपासिंधु सिव परम अगाधा ।
प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ॥
शंकररुख अवलोकि भवानी ।
प्रभु मोहि तजेउ हृदय अकुलानी ॥
निज अघ समुझि न कछु कहिजाई ।
तपइ अवाँ इव उर अधिकाई ॥
सतिहि ससोच जानि वृषकेतू ।
कही कथा सुंदर सुख हेतू ॥
बरनत पंथ विविध इतिहासा ।
विस्वनाथ पहुँचे कैलासा ॥
तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन ।
बैठे बटतर करि कमलासन ॥
शंकर सहज सरूप सँभारा ।
लागि समाधि अखंड अपारा ॥

दो०—सती बसहिं कैलास तब, अधिक सोच मन माँहिं ।
मरमु न कोऊ जान कछु, जुग सम दिवस सिराहिं ॥१३॥

चौ०—नित नव सोच सती उर भारा ।
कब जइहउँ दुख-सागर पारा ॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना ।
पुनि पति-बचन मृषा करि जाना ॥

सेा फल मोहिं विधाता दीन्हा।
जेा कछु उचित रहा सेाइ कीन्हा॥
अब बिधि अस बूझिय नहिं तेाहीं।
शंकर-बिमुख जिआवसि मेाहीं॥
कहि न जाइ कछु हृदय-गलानी।
मन महँ रामहि सुमिर सयानी॥
जौं प्रभु दीनदयाल कहावा।
आरतिहरन वेद जस गावा॥
तौ मैं विनय करउँ कर जेारी।
छूटउ बेगि देह यह मेारी॥
जेा मेारे सिव चरन सनेहू।
मन क्रम वचन सत्य व्रत एहू॥

दे०—तौ सबदरसी सुनिय प्रभु, करउ सेा बेगि उपाय।
होइ मरन जेहि बिनहिं श्रम, दुसह बिपत्ति बिहाइ॥१४॥

चौ०—यहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी।
अकथनीय दारुन दुख भारी॥
बीते संवत सहस सतासी।
तजी समाधि संभु अबिनासी॥
राम नाम सिव सुमिरन लागे।
जानेउ सती जगतपति जागे॥
जाइ संभुपद बंदन कीन्हा।
सनमुख शंकर आसन दीन्हा॥

लगे कहन हरिकथा रसाला।
दच्छ प्रजेस भये तेहि काला॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक।
दच्छहिं कीन्ह प्रजापति नायक॥
बड़ अधिकार दच्छ जब पावा।
अति अभिमान हृदय तब आवा॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥

दो०—दच्छ लिये मुनि बोलि सब, करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मखभाग॥१५॥

चौ०—किन्नर नाग सिद्ध गन्धर्बा।
बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा॥
बिष्णु बिरंचि महेस बिहाई।
चले सकल सुर जान बनाई॥
सती बिलोकें ब्योम बिमाना।
जात चले सुंदर बिधि नाना॥
सुरसुंदरी करहिं कल गाना।
सुनत स्रवन छूटहिं मुनिध्याना॥
पूछेउ तब सिव कहेउ बखानी।
पिताजग्य सुनि कछु हरषानी॥
जौं महेस मोहि आयसु देहीं।
कछु दिन जाइ रहउँ मिस एहीं॥

पतिपरित्याग हृदय दुख भारी ।
कहइ न निज अपराध बिचारी ॥
बोली सती मनोहर बानी ।
भय संकोच प्रेम-रस सानी ॥

दो०—पिताभवन उत्सव परम, जौ प्रभु आयसु होइ ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ ॥ १६ ॥

चौ०—कहेहु नीक मोरेहु मन भावा ।
यह अनुचित नहिं नेवत पठावा ॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाई ।
हमरे बयर तुम्हउ बिसराई ॥
ब्रह्मसभा हम सन दुख माना ।
तेहिते अजहुँ करहिं अपमाना ॥
जौ बिनु बोले जाहु भवानी ।
रहइ न सील सनेहु न कानी ॥
जदपि मित्र-प्रभु-पितु-गुरु गेहा ।
जाइय बिनु बोलेहु न संदेहा ॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई ।
तहाँ गये कल्यान न होई ॥
भाँति अनेक संभु समझावा ।
भावावस न ग्यान उर आवा ॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहि बोलाये ।
नहि भलि बात हमारे भाये ॥

दो०—कहि देखा हर जतन बहु, रहइ न दच्छकुमारि ।
दिये मुख्य गन संग तब, बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥ १७ ॥

चौ०—पिता भवन जब गई भवानी ।
दच्छत्रास काहु न सनमानी ॥
सादर भलेहि मिली एक माता ।
भगिनी मिलीं बहुत मुसुकाता ॥
दच्छ न कछु पूछी कुसलाता ।
सतिहिं बिलोकि जरे सब गाता ॥
सती जाइ देखेउ तब जागा ।
कतहुँ न दीख संभु कर भागा ।
तब चित चढ़ेउ जो शंकर कहेऊ ।
प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ ॥
पाछिल दुख न हृदय अस ब्यापा ।
जस यह भयउ महा परितापा ॥
जद्यपि जग दारुन दुख नाना ।
सब तें कठिन जाति अपमाना ॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा ।
बहु बिधि जननी कीन्ह प्रबोधा ॥

दो०—सिव अपमान न जाइ सहि, हृदय न होइ प्रबोध ।
सकल सभहिं हठि हटकि तब, बोली बचन सक्रोध ॥ १८ ॥

चौ०—सुनहु सभासद सकल मुनिंदा ।
कही सुनी जिन्ह शंकर-निंदा ॥

संत-संभु-श्रीपति-अपवादा।
सुनिय जहाँ तहँ असि मरजादा॥
काटिय तासु जीभ जो बसाई।
स्रवन मूँदि न त चलिय पराई॥
जगदातमा महेस पुरारी।
जगतजनक सबके हितकारी॥
पिता मंदमति निंदत तेही।
दच्छ-सुक्र-संभव यह देही॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू।
उर धीर चंद्रमौलि वृषकेतू॥
अस कहि जोगअगिनि तनु जारा।
भयउ सकल मष हाहाकारा॥

दो०—सती मरन सुनि संभुगन, लगे करन मष खीस।
जग्यबिधंस बिलोकि भृगु, रच्छा कीन्हि मुनीस॥१६॥

चौ०—समाचार सब शंकर पाये।
बीरभद्र करि कोप पठाये॥
जग्यबिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा।
सकल सुरन्ह बिधिवत फलदीन्हा॥
भई जगबिदित दच्छगति सोई।
जसि कछु संभुबिमुख कै होई॥
यह इतिहास सकल जग जाना।
तातें मैं संक्षेप बखाना॥

सती मरत हरि सन बर माँगा।
जनम जनम सिव-पद-अनुरागा॥
तेहि कारन हिमगिरिगृह जाई।
जनमी पारवती तनु पाई॥
जब तें उमा सैलगृह जाई।
सकल सिद्ध संपति तहँ छाई॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआस्रम कीन्हे।
उचित बास हिम भूधर दीन्हे॥

दो०—सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटी सुंदर सैल पर, मनि आकर बहु भाँति॥२०॥

चौ०—सरिता सब पुनीत जल बहहीं।
खग मृग मधुपसुखी सब रहहीं॥
सहज बयर सब जीवन त्यागा।
गिरि पर सकल करहिँ अनुरागा॥
सोह सैल गिरिजागृह आये।
जिमि जन रामभगति के पाये॥
नित नूतन मंगल गृह तासू।
ब्रह्मादिक गावहिं जस जासू॥
नारद समाचार सब पाये।
कौतुकही गिरिगेह सिधाये॥
सैलराज बड़ आदर कीन्हा।
पद पखारि बर आसन दीन्हा॥

नारिसहित मुनिपद सिरु नावा।
चरनसलिल सब भवन सिचावा॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना।
सुता बोलि मेली मुनि-चरना॥

दो०—त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम्ह; गति सर्वज्ञ तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन, मुनिवर हृदय बिचारि॥२१॥

चौ०—कह मुनि बिहँसि गूढ़ मृदु बानी।
सुता तुम्हारि सकल गुनखानी॥
सुंदर सहज सुसील सयानी।
नाम उमा अंबिका भवानी॥
सब लच्छन-संपन्न कुमारी।
होइहि संतत पियहि पियारी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता।
एहि तें जसु पइहहिं पितु माता॥
होइहि पूज्य सकल जग माहीं।
एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं॥
एहि कर नाम सुमिर संसारा।
तिय चढ़िहहिं पतिब्रत-असि-धारा॥
सैल सुलच्छनि सुता तुम्हारी।
सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी॥
अगुन अमान मातुपितुहीना।
उदासीन सब संसयछीना॥

दो०—जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल बेख।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि, परी हस्त असि रेख ॥२२॥

चौ—सुनि मुनि-गिरा सत्य जिय जानी।
दुख दंपतिहिं उमा हरषानी॥
नारदहू यह भेद न जाना।
दसा एक समुझब बिलगाना॥
सकल सखी गिरिजा गिरि मैना।
पुलक सरीर भरे जल नैना॥
होइ न मृषा देव-रिषि भाखा।
उमा सो बचन हृदय धरि राखा॥
उपजेउ सिव-पद कमल सनेहू।
मिलन कठिन मन भा संदेहू॥
जानि कुअवसर प्रीति दुराई।
सखी उछंग बैठि पुनि जाई॥
भूठ न होइ देवरिषि-बानी।
सोचहिं दंपति सखी सयानी॥
उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ।
कहहु नाथ का करिय उपाऊ॥

दो०—कह मुनीस हिमवंत सुनु, जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनहार ॥२३॥

चौ०—तदपि एक मैं कहउँ उपाई।
होइ करइ जो दैव सहाई॥

जस बर मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं।
मिलिहि उमहिं तस संसय नाहीं॥
जे जे बर के दोष बखाने।
ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जौं बिबाहु शंकर सन होई।
दोषउ गुन सम कह सब कोई॥
जौं अहिसेज सयन हरि करहीं।
बुध कछु तिन्ह कहँ दोषु न धरहीं।
भानु कृसानु सर्व रस खाहीं।
तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं॥
सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई।
सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहँ नहिं दोस गोसाईं।
रवि पावक सुरसरि की नाईं॥

दो०—जौं अस हिसिषा करहिं नर, जड़विवेक अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महँ जीव कि ईस समान॥२४॥

चौ०—सुरसरि जलकृत बारुनि जाना।
कबहुँ न संत करहिं तेहिं पाना॥
सुरसरि मिले सो पावन जैसे।
ईस अनीसहि अन्तर तैसे॥
संभु सहज समरथ भगवाना।
एहि बिबाह सब बिधि कल्याना॥

दुराराध्य पै अहहिं महेसू।
आसुतोष पुनि किये कलेसू॥
जौं तपु करइ कुमारि तुम्हारी।
भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
जद्यपि वर अनेक जग माहीं।
एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं॥
बरदायक प्रनतारति भंजन।
कृपासिंधु सेवक मन-रंजन॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधे।
लहिय न कोटि जोग जप साधे॥

दो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि, गिरिजहि दीन्हि असीस।
होइहि यह कल्यान अब, संसय तजिय गिरीस॥२५॥

चौ०—कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ।
आगिल चरित सुनहु जस भयऊ॥
पतिहि एकांत पाइ कह मैना।
नाथ न मैं समुझे मुनि-बैना॥
जौं घरु बर कुल होइ अनूपा।
करिय बिवाह सुता अनुरूपा॥
न त कन्या बरु रहइ कुँआरी।
कंत उमा मम प्रान पियारी॥
जौं न मिलहि बरु गिरिजहि जोगू।
गिरि जड़ सहज कहिहि सब लोगू॥

सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू।
जेहि न बहोरि होइ उर दाहू॥
अस कहि परी चरन धरि सीसा।
बोले सहित सनेह गिरीसा॥
बरु पावक प्रगटइ ससि माहीं।
नारदबचन अन्यथा नाहीं।

दो०—प्रिया सो परिहरहु सब, सुमिरहु श्रीभगवान।
पारवतिहि निरमयउ जेहि, सोइ करिहि कल्यान॥२६॥

चौ०—अब जौ तुमहिं सुता पर नेहू।
तौ अस जाइ सिखावन देहू॥
करइ सो तपु जेहि मिलहिं महेसू।
आन उपाय न मिटिहि कलेसू॥
नारद-बचन सगर्भ सहेतू।
सुंदर सब-गुन-निधि बृषकेतू॥
अस बिचारि तुम तजहु असंका।
सबहि भाँति शंकर अकलंका॥
सुनि पतिबचन हरषि मनमाहीं।
गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं॥
उमहिं बिलोकि नयन भरि बारी।
सहित सनेह गोद बैठारी॥
बारहिं बार लेत उर लाई।
गदगद कंठ न कछु कहि जाई॥

जगतमातु सवज्ञ भवानी।
मातुसुखद बोली मृदु बानी॥
दो०—सुनहि मातु मैं दीख अस, सपन सुनावउँ तोहिं।
सुंदर गौर सुबिप्रबर, अस उपदेसेउ मोहिं॥ २७॥
चौ०—करहि जाइ तपु सैलकुमारी।
नारद कहा सो सत्य बिचारी॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा।
तपु सुखप्रद दुखदोष नसावा॥
तपबल रचइ प्रपंच बिधाता।
तपबल बिष्णु सकल-जग-त्राता॥
तपबल संभु करहिं संहारा।
तपबल सेष धरइ महिभारा॥
तपअधार सब सृष्टि भवानी।
करहि जाइ तपु अस जिय जानी॥
सुनत बचन बिसमित महतारी।
सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी॥
मातुपितहि बहुबिधि समुझाई।
चली उमा तप हित हरषाई॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता।
भये बिकल मुख आव न बाता॥
दो०—बेदसिरा मुनि आइ तब, सबहिं कहा समुझाइ।
पारबती महिमा सुनत, रहे प्रबोधिहि पाइ॥ २८॥

चौ०—उर धरि उमा प्रान-पति-चरना ।
जाइ बिपिन लागीं तप करना ॥
अति सुकुमार न तनु तप-जोगू ।
पतिपद सुमिरि तजेउ सब भोगू ॥
नित नव चरन उपज अनुरागा ।
बिसरी देह तपहि मन लागा ॥
संवत सहस मूल फल खाये ।
सागु खाइ सत बरष गवाँये ॥
कछु दिन भोजन बारि बतासा ।
किये कठिन कछु दिन उपवासा ॥
बेलपाति महि परइ सुखाई ।
तीनि सहस संबत सोइ खाई ॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना ।
उमहिं नाम तब भयउ अपरना ॥
देखि उमहिं तप खीन सरीरा ।
ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा ॥

दो०—भयउ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराज-कुमारि ।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ॥ २६ ॥

चौ०—अस तपु काहु न कीन्ह भवानी ।
भये अनेक धीर मुनि ज्ञानी ॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी ।
सत्य सदा संतत सुचि जानी ॥

आवहिं पिता बुलावन जबही।
हठ परिहरि घर जायहु तबही॥
मिलहिं तुम्हहिं जब सप्तरिषीसा।
जानेहु तब प्रमान बागीसा॥
सुनत गिरा बिधि गगन बखानी।
पुलकगात गिरिजा हरषानी॥
उमा चरित सुंदर मैं गावा।
सुनहु संभु कर चरित सुहावा॥
जब तें सती जाइ तनु त्यागा।
तब तें सिवमन भयउ विरागा॥
जपहिं सदा रघुनायकनामा।
जहँ तहँ सुनहिं राम-गुण-ग्रामा॥

दो०—चिदानंद सुखधाम सिव, बिगत मोह मद-काम।
बिचरहिं महि धरि हृदय हरि, सकल लोक-अभिराम॥३०॥

चौ०—कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ज्ञाना।
कतहुँ रामगुन करहिं बखाना॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना।
भगत बिरह दुख दुखित सुजाना॥
एहि बिधि गयउ काल बहु बीती।
नित नव होइ रामपद प्रीती॥
नेमु प्रेमु शंकर कर देखा।
अविचल हृदय भगति कै रेखा॥

प्रगटे रामु कृतज्ञ कृपाला ।
रूप-सील-निधि तेज बिसाला ॥
बहु प्रकार संकरहिं सराहा ।
तुम बिनु अस ब्रतु को निरवाहा ॥
बहु बिधि राम सिवहिं समुझावा ।
पारबती कर जनम सुनावा ॥
अति पुनीत गिरजा कै करनी ।
बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी ॥

दो०—अब बिनती मम सुनहु सिव, जौ मोपर निज नेहु ।
जाइ बिवाहहु सैलजहि, यह मोहि माँगे देहु ॥३१॥

चौ०—कह सिव जदपि उचित अस नाहीं ।
नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं ॥
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा ।
परम धरम यह नाथ हमारा ॥
मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी ।
बिनहिं बिचार करिय सुभजानी ॥
तुम्ह सब भाँति परम-हितकारी ।
अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी ॥
प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना ।
भगति बिबेक धरमजुत रचना ॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ ।
अब उर राखेहु जो हम कहेऊ ॥

अंतरधान भये अस भाखी ।
संकर सोइ मूरति उर राखी ॥
तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आये ।
बोले प्रभु अति बचन सुहाये ॥

दो०—पारबती पहिं जाइ तुम्ह, प्रेमपरीक्षा लेहु ।
गिरिहि प्रेरि पठयेहु भवन, दूरि करेहु संदेहु ॥३२॥

चौ०—तब रिषि तुरत गौरि पहँ गयऊ ।
देखि दसा मुनि बिसमय भयऊ ॥
रिषिन गौरि देखी तहँ कैसी ।
मूरतिवंत तपस्या जैसी ॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी ।
करहु कवन कारन तप भारी ॥
केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू ।
हम सन सत्य मरमु किन कहहू ॥
कहत बचन मनु अति सकुचाई ।
हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई ॥
मनु हठ परा न सुनइ सिखावा ।
चहत बारि पर भीति उठावा ॥
नारद कहा सत्य सोइ जाना ।
बिनु पंखन हम चहहिं उड़ाना ॥
देखहु मुनि अबिबेक हमारा ।
चाहिय सदा सिवहि भरतारा ॥

दो०—सुनत बचन बिहँसे रिषय गिरिसंभव तव देह।
नारद कर उपदेस सुनि, कहहु बसेउ को गेह ॥३३॥

चौ०—दच्छसुतन्ह उपदेसिन्हि जाई।
तिन फिरि भवन न देखा आई ॥
चित्रकेतु कर घर उन घाला।
कनक कसिपुकर पुनि अस हाला ॥
नारदसिष जे सुनहिं नर-नारी।
अवसि होहिं तजि भवन भिखारी ॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा।
आपु सरिस सबही चह कीन्हा ॥
तेहि के बचन मानि बिस्वासा।
तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा ॥
निर्गुन निलज कुवेष कपाली।
अकुल अगेह दिगंबर ब्याली ॥
कहहु कवन सुख अस बर पाये।
भल भूलिहु ठग के बौराये ॥
पंच कहे सिव सती बिबाही।
पुनि अवडेरि मरायेन्हि ताही ॥

दो०—अब सुख सोवत सोचु नहिं, भीख माँगि भव खाहिं।
सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिं ॥३४॥

चौ०—अजहूँ मानहु कहा हमारा।
हम तुम्ह कहँ बर नीक बिचारा ॥

अतिसुंदर सुचि सुखद सुसीला।
गावहिं वेद जासु जस लीला॥
दूषनरहित सकल-गुन-रासी।
श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी॥
अस बर तुम्हहिं मिलाउब आनी।
सुनत बिहँसि कह बचन भवानी॥
सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा।
हठ न छूट छूटइ बरु देहा॥
कनकउ पुनि पषान तें होई।
जारेहु सहजु न परिहर सोई॥
नारद बचन न मैं परिहरऊँ।
बसउ भवन उजरउ नहिं डरऊँ॥
गुरु के बचन प्रतीति न जेही।
सपनेहु सुगम न सुखसिधि तेही॥

दो०—महादेव अवगुन भवन, विष्णु सकल-गुन-धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम॥३५॥

चौ०—जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा।
सुनतेउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा॥
अब मैं जनम संभु हित हारा।
को गुन दूषन करइ बिचारा॥
जौ तुम्हरे हठ हृदय बिसेषी।
रहि न जाइ बिनु किये बरेषी॥

तौ कौतुकिअन्ह आलस नाहीं ।
बर कन्या अनेक जग माहीं ॥
जनम कोटि लगि रगरि हमारी ।
बरउँ संभु न तु रहउँ कुँआरी ॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू ।
आप कहहिं सत बार महेसू ॥
मैं पा परउँ कहइ जगदंबा ।
तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा ॥
देखि प्रेम बोले मुनि ज्ञानी ।
जय जय जगदंबिके भवानी ॥

दो०—तुम माया भगवान शिव, सकल-जगत-पितु-मातु ।
नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि पुनि हरषत गातु ॥३६॥

चौ०—जाइ मुनिन्ह हिमवंत पठाये ।
करि बिनती गिरिजहिं गृह ल्याये ॥
बहुरि सप्तरिषि सिव पहिं जाई ।
कथा उमा कै सकल सुनाई ॥
भये मगन सिव सुनत सनेहा ।
हरषि सप्तरिषि गवने गेहा ॥
मनु थिरु करि तब संभु सुजाना ।
लगे करन रघुनायक ध्याना ॥
तारकु असुर भयउ तेहि काला ।
भुजप्रताप बल तेज बिसाला ॥

तेइ सब लोक लोकपति जीते।
भये देव सुख संपति रीते॥
अजर अमर सो जीति न जाई।
हारे सुर करि बिबिध लराई॥
तब विरंचि सन जाइ पुकारे।
देखे बिधि सब देव दुखारे॥

दो०—सब सन कहा बुझाइ बिधि, दनुजनिधन तब होइ।
संभु-सुक्र-संभूत सुत, एहि जीतइ रन सोइ॥३७॥

चौ०—मोर कहा सुनि करहु उपाई।
होइहि ईश्वर करिहि सहाई॥
सती जो तजी दच्छ-मख देहा।
जनमी जाइ हिमाचल गेहा॥
तेइ तपु कीन्ह संभु पति लागी।
सिव समाधि बैठे सब त्यागी॥
जदपि अहइ असमंजस भारी।
तदपि बात इक सुनहु हमारी॥
पठवहु काम जाइ सिव पाहीं।
करइ छोभ शंकर मन माहीं॥
तब हम जाइ सिवहिं सिर नाई।
करवाउब बिवाह बरिआई॥
एहि बिधि भलेहि देवहित होई।
मत अति नीक कहइ सब कोई॥

अस्तुति सुरन कीन्हि अति हेतू
प्रगटेउ विषमबान झखकेतू

दो०—सुरन्ह कही निज बिपति सब, सुनि मन कीन्ह बिचार
संभुबिरोध न कुसल मोहिं, बिहँसि कहेउ अस मार ॥३८॥

चौ०—तदपि करब मैं काज तुम्हारा।
स्रुति कह परम धरम उपकारा॥
परहित लागि तजइ जो दही।
संतत संत प्रसंसहिं तेही॥
अस कहि चलेउ सबहिं सिर नाई।
सुमन-धनुष कर सहित सहाई॥
चलत मार अस हृदय बिचारा।
सिवबिरोध ध्रुव मरन हमारा॥
तब आपन प्रभाव बिस्तारा।
निज बस कीन्ह सकल संसारा॥
कोपेउ जबहिं बारि-चर-केतू।
छन महँ मिटे सकल स्रुतिसेतू॥
ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना।
धीरज धरम ज्ञान विज्ञाना॥
सदाचार जप जोगबिरागा।
सभय बिबेक कटक सब भागा॥

छंद—भागेउ बिबेक सहाइ सहित सो सुभट संजुग महि मुरे।
सद्ग्रंथ पर्वत कंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे॥

होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा।
दुइ माथ केहिं रतिनाथ जेहिकहुँ कोपि कर धनुसर धरा॥

दो०—जे सजीव जग चर अचर, नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि, भये सकल बस काम॥ ३६॥

चौ०—सबके हृदय मदन अभिलाखा।
लता निहारि नवहिं तरुसाखा॥
नदी उमगि अंबुधि कहुँ धाई।
संगम करहिं तलाब तलाई॥
जहँ अस दसा जड़न की बरनी।
को कहि सकइ सचेतन्ह करनी॥
पसु पच्छी नभ जल थलचारी।
भये कामबस समय बिसारी॥
मदन अंध ब्याकुल सब लोका।
निसिदिन नहिं अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किन्नर ब्याला।
प्रेत पिसाच भूत बेताला॥
इनकी दसा न कहेउँ बखानी।
सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध बिरक्त महा मुनि जोगी।
तेपि कामबस भये बियोगी॥

छंद—भये कामबस जोगीस तापस पामरन की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहै॥

अबला बिलोकहिं पुरुषमय जग पुरुष सब अबलामयम् ।
दुइ दंड भरि ब्रह्माण्ड भीतर कामकृत कौतुक अयम् ॥

सो०—धरा न काहू धीर, सबके मन मनसिज हरे ।
जे राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महँ ॥४०॥

चौ०—उभय घरी अस कौतुक भयऊ ।
जब लगि काम संभु पहँ गयऊ ॥
सिवहिं बिलोकि ससंकेउ मारू ।
भयउ यथाथिति सब संसारू ॥
भये तुरत जग जीव सुखारे ।
जिमि मद उतरि गये मतवारे ॥
रुद्रहिं देखि मदन भय माना ।
दुराधर्ष दुर्गम भगवाना ॥
फिरत लाज कछु कहि नहिं जाई ।
मरन ठानि मन रचेसि उपाई ॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा ।
कुसुमित नव तरुराज बिराजा ॥
बन उपबन बापिका तड़ागा ।
परम सुभग सब दिसा बिभागा ॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा ।
देखि मुयेहु मन मनसिज जागा ॥

छंद—जागइ मनोभव मुयेहु मन बन सुभगता न परइ कही ।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही ॥

बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपसरा॥
दो०—सकल कला करि कोटि विधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव, कोपेउ हृदय-निकेत॥४१॥
चौ०—देखि रसाल बिटप बर साखा।
तेहि पर चढ़ेउ मदन मनसाखा॥
सुमन चाप निज सर संधाने।
अति रिस ताकि स्रवन लगि ताने॥
छाड़ेउ बिषम बान उर लागे।
छूटि समाधि संभु तब जागे॥
भयेउ ईस मन छोभ बिसेखी।
नयन उघारि सकल दिसि देखी॥
सौरभ पल्लव मदन बिलोका।
भयेउ कोप कंपेउ त्रयलोका॥
तब सिव तीसर नयन उघारा।
चितवत काम भयउ जरि छारा॥
हाहाकार भयउ जग भारी।
डरपे सुर भये असुर सुखारी॥
समुझि कामसुख सोचहिं भोगी।
भये अकंटक साधक जोगी॥
छंद—जोगी अकंटक भये पति-गति सुनति रति मुरछित भई।
रोदति वदति बहु भाँति करुना करति शंकर पहिं गई॥

अति प्रेम करि बिनती विविधबिधि जोरि कर सनमुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही॥

दो०—अब तं रति तव नाथ कर, होइहि नाम अनंग
बिनु बपु व्यापिहि सबहि पुनि, सुनु निज मिलन प्रसंग॥४२॥

चौ०—जब जदुबंस कृष्ण अवतारा।
होइहि हरन महा महि-भारा॥
कृष्ण तनय होइहि पति तोरा।
बचन अन्यथा होइ न मोरा॥
रति गवनी सुनि संकर बानी।
कथा अपर अब कहउँ बखानी॥
देवन समाचार सब पाये।
ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाये॥
सब सुर विष्णु विरंचि समेता।
गये जहाँ सिव कृपानिकेता॥
पृथक् पृथक् तिन्ह कीन्ह प्रसंसा।
भये प्रसन्न चन्द्र-अवसंता॥
बोले कृपासिंधु बृषकेतू।
कहहु अमर आये केहि हेतू॥
कह बिधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी।
तदपि भगति बस बिनवउँ स्वामी॥

दो०—सकल सुरन्ह के हृदय अस, संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं, नाथ तुम्हार बिवाहु॥४३॥

चौ०—यह उत्सव देखिय भरि लोचन।
सोइ कछु करहु मदन-मद-मोचन॥
काम जारि रति कहँ बर दीन्हा।
कृपा सिंधु यह अति भल कीन्हा॥
सासति करि पुनि करहिं पसाऊ।
नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ॥
पारबती तप कीन्ह अपारा।
करहु तासु अब अंगीकारा॥
मुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी।
ऐसइ होउ कहा सुख मानी॥
तब देवन दुंदुभी बजाई।
बरषि सुमन जय जय सुरसाई॥
अवसर जानि सप्तरिषि आये।
तुरतहि बिधि गिरिभवन पठाये॥
प्रथम गये जहँ रही भवानी।
बोले मधुर बचन छलसानी॥

दो०—कहा हमार न सुनेहु तब, नारद के उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पन, जारेउ काम महेस॥४४॥

चौ०—सुनि बोली मुसुकाइ भवानी।
उचित कहेउ मुनिवर बिग्यानी॥
तुम्हरे जान काम अब जारा।
अब लगि संभु रहे सबिकारा॥

हमरे जान सदा सिव जोगी।
अज अनवद्य अकाम अभोगी॥
जौं मैं सिव सेयउँ अस जानी।
प्रीति समेत करम मन बानी॥
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा।
करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा॥
तुम्ह जो कहेहु हर जारेउ मारा।
सो अति बड़ अविवेक तुम्हारा॥
तात अनल कर सहज सुभाऊ।
हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ॥
गये समीप सो अवसि नसाई।
असि मनमथ महेस कै नाई॥

दो०—हिय हरषे मुनि बचन सुनि, देखि प्रीति विस्वास।
चले भवानी नाइ सिर, गये हिमाचल पास॥४५॥

चौ०—सब प्रसंग गिरिपतिहिं सुनावा।
मदन-दहन सुनि अति दुख पावा॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना।
सुनि हिमवंत बहुत सुख माना॥
हृदय बिचारि संभु प्रभुताई।
सादर मुनिवर लिये बोलाई॥
सुदिन सुनखत सुघरी सोचाई।
बेगि बेदि बिधि लगन धराई॥

पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही।
गहि पद विनय हिमाचल कीन्ही॥
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्ह सो पाती।
बाँचत प्रीति न हृदय समाती॥
लगन बाँचि अज सबहि सुनाई।
हरषे सुनि सब सुर समुदाई॥
सुमन वृष्टि नभ बाजन बाजे।
मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे॥

तो०—लगे सवाँरन सकल सुर, वाहन बिबिध बिमान।
होहिं सगुन मंगल सुखद, करहिं अपसरा गान॥४६॥

चौ०—सिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा।
जटा मुकुट अहिमौर सँवारा॥
कुंडल कंकन पहिरे व्याला।
तन बिभूति पट केहरि-छाला॥
ससि ललाट सुंदर सिर गंगा।
नयन तीनि उपवीत भुजङ्गा॥
गरल कंठ उर नर-सिर-माला।
असिव वेष सिवधाम कृपाला॥
कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा।
चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा॥
देखि सिवहिं सुरत्रिय मुसुकाहीं।
बर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥

बिष्णु विरंचि आदि सुरत्राता।
चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा।
नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥

दो०—बिष्णु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज॥४७॥

चौ०—बर अनुहारि बरात न भाई।
हँसी करइहउ परपुर जाई॥
बिष्णु बचन सुनि सुर मुसुकाने।
निज निज सेन सहित बिलगाने॥
मनहीं मन महेश, मुसुकाहीं।
हरि के व्यंग बचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे।
भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥
सिव-अनुसासन सुनि सब आये।
प्रभु-पद-जलज सीस तिन्ह नाये॥
नाना बाहन नाना बेखा।
बिहँसे सिव समाज निज देखा॥
कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू।
बिनु पद कर कोउ बहु-पद-बाहू॥
बिपुल नयन कोउ नयनबिहीना।
रिष्ट पुष्ट कोउ अति तनखीना॥

छंद—तनखीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरे॥
खर-स्वान-सुअर-सृगाल-मुख गन वेष अगनित को गनै।
बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहि बनै॥

सो०—नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन बिचित्र बिधि॥४८॥

चौ०—जस दूलह तस बनी बराता।
कौतुक बिबिध होहिं मग जाता॥
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना।
अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना॥
सैल सकल जहँ लगि जग माहीं।
लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं॥
बन सागर सब नदी तलावा।
हिमगिरि सब कहँ नेवति पठावा॥
कामरूप सुंदर तनुधारी।
सहित समाज सोह बर नारी॥
आये सकल हिमाचल गेहा।
गावहिं मंगल सहित सनेहा॥
प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराये।
जथाजोग जहँ तहँ सब छाये॥
पुर सोभा अवलोकि सुहाई।
लागइ लघु बिरंचि-निपुनाई॥

छंद—लघु लागि बिधि की निपुनता अवलोकि पुरसोभा सही।
बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही॥
मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि-मन मोहहीं॥

दो०—जगदंबा जहँ अवतरी, सो पुर बरनि कि जाइ।
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख, नित नूतन अधिकाइ॥ ४६॥

चौ०—नगर निकट बरात सुनि आई।
पुर खरभर सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सब बाहन नाना।
चले लेन सादर अगवाना॥
हिय हरषे सुरसेन निहारी।
हरिहि देखि अति भये सुखारी॥
सिवसमाज जब देखन लागे।
बिडरि चले बाहन सब भागे॥
धरि धीरज तहँ रहे सयाने।
बालक सब लइ जीव पराने॥
गये भवन पूछहिं पितु माता।
कहहिं बचन भय-कंपित गाता॥
कहिय कहा कहि जाइ न बाता।
जम कर धारि किधौं बरिआता॥
बर बौराय बरद असवारा।
ब्याल कपाल बिभूषन छारा॥

छंद—तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा ।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिन विकटमुख रजनीचरा ॥
जो जियत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही ।
देखिहि सो उमा बिबाह घर घर बात असि लरिकन्ह कही ॥

दो०—समुझि महेस समाज सब, जननि जनक मुसुकाहिं ।
बाल बुझाये बिबिध बिधि, निडर होहु डर नाहिँ ॥ ५० ॥

चौ०—लइ अगवान बरातहिं आये ।
दिये सबहि जनवास सुहाये ॥
मैना सुभ आरती सवाँरी ।
संग सुमंगल गावहिँ नारी ॥
कंचनथार सोह बरपानी ।
परिछन चली हरहिं हरषानी ॥
बिकट वेष रुद्रहि जब देखा ।
अबलन्ह उर भय भयउ बिसेखा ॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा ।
गये महेस जहाँ जनवासा ॥
मैना हृदय भयउ दुख भारी ।
लीन्हीं बोलि गिरीसकुमारी ॥
अधिक सनेह गोद बैठारी ।
स्याम सरोज नयन भरि बारी ॥
जेहि बिधि तुम्हहिं रूप अस दीन्हा ।
तेहि जड़ बर बाउर कस कीन्हा ।

छंद—कस कीन्ह बर बौराह बिधि जेहि तुम्हहि सुंदरता दई।
जो फलु चहिय सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥
तुम्ह सहित गिरि ते गिरउँ पावक जरउँ जलनिधि महँ परउँ।
घर जाउ अपजस होउ जग जीवत विवाह न हौं करउँ॥

दो०—भईं विकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलाप रोदति वदति, सुतासनेह सँभारि॥५१॥

चौ०—नारद कर मैं काह बिगारा।
भवन मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेस उमहिं जिन्ह दीन्हा।
बौरे बरहि लागि तप कीन्हा॥
साँचेहु उनके मोह न माया।
उदासीन धन धाम न जाया॥
पर-घर-घालक लाज न भीरा।
बाझ कि जान प्रसव की पीरा॥
जननिहिं बिकल बिलोकि भवानी।
बोली जुत बिबेक मृदुबानी॥
अस बिचारि सोचहि मति माता।
सो न टरइ जो रचइ बिधाता॥
करम लिखा जौ बाउर नाहू।
तौ कत दोष लगाइय काहू॥
तुम्हसन मिटिहि कि बिधि के अंका।
मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका॥

छंद—जिनि लेहु मातु कलंक करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पाउब तहीं॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषण नयनबारि बिमोचहीं॥

दो०—तेहि अवसर नारद सहित, अरु ऋषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि, गवने तुरत निकेत॥५२॥

चौ०—तब नारद सबही समुझावा।
पूरब कथा प्रसंग सुनावा॥
मैना सत्य सुनहु मम बानी।
जगदंबा तव सुता भवानी॥
अजा अनादि शक्ति अविनासिनि।
सदा संभु अरधंग-निवासिनि॥
जग-संभव-पालन-लय-कारिनि।
निज इच्छा लीला-बपु-धारिनि॥
जनमी प्रथम दच्छ गृह जाई।
नाम सती सुंदर तनु पाई॥
तहँउ सती शंकरहिं बिबाही।
कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं॥
एक बार आवत सिव संगा।
देखेउ रघुकुल-कमल-पतंगा॥
भयउ मोह सिव कहा न कीन्हा।
भ्रमबस बेष सीय कर लीन्हा॥

छंद—सिय वेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध शंकर परिहरी।
हरबिरह जाइ बहोरि पितु के जग्य जोगानल जरी॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तप किया।
अस जानि संशय तजहु गिरजा सर्वदा शंकरप्रिया॥

दो०—सुनि नारद के बचन तब, सब कर मिटा विषाद।
छन महँ ब्यापेउ सकल पुर, घर घर यह संवाद॥५३॥

चौ०—तब मैना हिमवंत अनंदे।
पुनि पुनि पारबती पद बंदे॥
नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने।
नगर लोग सब अति हरषाने॥
लगे होन पुर मंगल गाना।
सजे सबहि हाटक घट नाना॥
भाँति अनेक भई जेवनारा।
सूपसास्त्र जस कछु व्यवहारा॥
सो जेवनार कि जाइ बखानी।
बसहि भवन जेहि मातु भवानी॥
सादर बोले सकल बराती।
विष्णु बिरंचि देव सब जाती॥
बिबिध पाँति बैठीं जेवनारा।
लगे परोसन निपुन सुआरा॥
नारिबृंद सुर जेंवत जानी।
लगीं देन गारी मृदुबानी॥

छंद—गारी मधुर सुर देहिं सुंदरि व्यंग बचन सुनावहीं।
भोजन करहिं सुर अति बिलंब बिनोद सुनि सचु पावहीं॥
जेंवत जो बढ़्यौ अनंद सो मुख कोटिहू न परइ कह्यौ।
अँचवाइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यौ॥

दो०—बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहँ, लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिबाह कर, पठये देव बुलाइ॥ ५४॥

चौ०—बोलि सकल सुर सादर लीन्हे।
सबहि जथोचित आसन दीन्हे॥
बेदी बेदबिधान सँवारी।
सुभग सुमंगल गावहिं नारी॥
सिंहासन अति दिव्य सुहावा।
जाइ न बरनि बिचित्र बनावा॥
बैठे सिव बिप्रन्ह सिर नाई।
हृदय सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥
बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाई।
करि सिंगार सखी लेइ आई॥
देखत रूप सकल सुर मोहे।
बरनइ छबि अस जग कबि कोहे॥
जगदंबिका जानि भवभामा।
सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा॥
सुंदरता मरजाद भवानी।
जाइ न कोटिन बदन बखानी॥

छंद—कोटिहु बदन नहिं बनइ बरनत जग-जननि-सोभा महा।
सकुचहिं कहत स्रुति सेष सारद मंदमति तुलसी कहा॥
छबिखानि मातु भवानि गवनी मध्य मंडप सिव जहाँ।
अवलोकि सकइ न सकुचि पति-पदकमल मनमधुकर तहाँ॥

दो०—मुनि अनुसासन गनपतिहि, पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करइ जनि, सुर अनादि जिय जानि॥५५॥

चौ०—जसि बिबाह कै बिधि स्रुति गाई।
महामुनिन्ह सो सब करवाई॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी।
भवहि समरपी जानि भवानी॥
पानिग्रह जब कीन्ह महेसा।
हिय हरषे तब सकल सुरेसा॥
बेदमंत्र मुनिवर उच्चरहीं।
जय जय जय शंकर सुर करहीं॥
बाजहिं बाजनि बिबिध बिधाना।
सुमनबृष्टि नभ भइ बिधि नाना॥
हर गिरजा कर भयउ बिबाहू।
सकल भुवन भरि रहा उछाहू॥
दासी दास तुरग रथ नागा।
धेनु बसन मनि वस्तु बिभागा॥
अन्न कनक भाजन भरि जाना।
दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥

छंद—दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यौ।
का देउँ पूरन काम शंकर चरन पंकज गहि रह्यौ॥
सिव कृपासागर ससुर कर संतोष सब भाँतिहि कियो।
पुनि गहे पदपाथोज मैना प्रेम-परिपूरन हियो॥

दो०—नाथ उमा मम प्रान सम, गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब, होइ प्रसन्न बर देहु॥ ५६॥

चौ०—बहु विधि संभु सासु समुझाई।
गवनी भवन चरन सिर नाई॥
जननी उमा बोलि तब लीन्ही।
लेइ उछंग सुन्दर सिख दीन्हीं॥
करेहु सदा शंकर-पद-पूजा।
नारिधरम पति देव न दूजा॥
बचन कहत भरि लोचन बारी।
बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी॥
कत बिधि सृजी नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहु सुख नाहीं॥
भइ अति प्रेम बिकल महतारी।
धीरज कीन्ह कुसमय बिचारी॥
पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना।
परम प्रेम कछु जाइ न बरना॥
सब नारिन्ह मिलि भेंटि भवानी।
जाइ जननि उर पुनि लपटानी॥

छं०—जननी बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहू दई।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखी लेइ सिंधु गई
जाचक सकल संतोषि शंकर उमा सहित भवन चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले॥

दो०—चले संग हिमवंत तब, पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाँति परितोष करि, बिदा कीन्ह वृषकेतु॥५७॥

चौ०—तुरत भवन आये गिरिराई।
सकल शैल सर लिये बोलाई॥
आदर दान बिनय बहु माना।
सबकर बिदा कीन्ह हिमवाना॥
जबहिं संभु कैलासहिं आये।
सुर सब निज निज लोक सिधाये॥
जगत मातुपितु संभु-भवानी।
तेहि सिंगारु न कहउँ बखानी॥
करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा।
गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥
हर-गिरिजा-बिहार नित नयऊ।
एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ॥
तब जनमेउ षट-बदन-कुमारा।
तारक असुर समर जेहि मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना।
षण्मुख जनम सकल जगजाना॥

छंद—जगु जान षनमुखजनमु करम प्रताप पुरुषारथ महा।
तेहि हेतु मैं वृष-केतु-सुत कर चरित संछेपहिं कहा॥
यह उमा-संभु-बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुख पावहीं॥

दो०—चरितसिंधु गिरिजारमन, वेद न पावहिं पारु।
बरनइ तुलसीदास किमि, अति-मति-मंद गँवारु॥ ५८॥

(२) रहीम के दोहे

जे गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ॥ १ ॥
वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बाटनवारे को लगै, ज्यों मेंहदी को रंग ॥ २ ॥
रहिमन यों सुख होत हैं, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत ॥ ३ ॥
रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं बेर ॥ ४ ॥
रहिमन निज मन की बिथा, मनही राखौ गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय ॥ ५ ॥
रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती, मानुष, चून ॥ ६ ॥
रहिमन जाचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हू को भयो, बावन आँगुर गात ॥ ७ ॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥ ८ ॥
कमला थिर न रहीम कह, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय ॥ ९ ॥

रहिमन गाज सराहिए, शशि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन खोय ॥१०॥
रहिमन मनहिं लगाइ कै, देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा, नारायण बस होय ॥११॥
कह रहीम इक दीप तें, प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै, दृग-दीपक जरु दोय ॥१२॥
काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूटै बाज को, साहिब चारा देइ ॥१३॥
भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिर ते भूमि लौं, लखौ तो एकै रूप ॥१४॥
काज परे कछु और है, काज सरे कछु और।
रहिमन भँवरी के भये, नदी सिरावत मौर ॥१५॥
जिहि रहीम मन आपनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लागो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥१६॥
रीति प्रीति सबसों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम को, बहुरि न संगति होत ॥१७॥
जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहि।
जल में जो छाया परी, काया भीजति नाहिं ॥१८॥
धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनल बसि, कहा भौंर के भाय ॥१९॥
अमरबेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिए काहि ॥२०॥

जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को इहै हवाल ।
तौ काहे कर पर धर्यो, गोबरधन गोपाल ॥२१॥
धूरि धरत नित सीस पर, कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज ॥२२॥
बड़े पेट को भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि ।
यातें हाथी हहरि कै, दए दाँत द्वै काढ़ि ॥२३॥
ससि, सकोच, साहस, सलिल, मान सनेह रहीम ।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है, घटत घटत घटि सीम ॥२४॥
कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम ।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम ॥२५॥
रहिमन रिस सहि तजत नहिं, बड़े प्रीति की पौरि ।
मूकन मारत आवई, नींद बिचारी दौरि ॥२६॥
अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़न के जोर ।
ज्यों शशि के संयोग ते, पचवत आगि चकोर ॥२७॥
रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि ।
दूध कलारी हाथ लगि, मद समुझै सब ताहि ॥२८॥
अमृत ऐसे बचन में, रहिमन रिस की गाँस ।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥२९॥
यों रहीम गति बड़न की, ज्यों तुरंग व्यवहार ।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥३०॥
करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन हजूर ।
मानो टेरत बिटप चढ़ि, मोहि समान को कूर ॥३१॥

छमा बड़न को चाहिए, छोटन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥३२॥
निज कर क्रिया रहीम कह, फल भावी के हाथ।
पासे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥३३॥
दोनों रहिमन एक से, जौ लौ बोलत नाहिं।
जानि परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माहिं ॥३४॥
आवत काज रहीम कह, गाढ़े बंधु सनेह।
जीरन होत न पेड़ ज्यों, थामे वरै बरेह ॥३५॥
रहिमन दुरदिन के परे, बड़न किये घटि काज।
पाँच रूप पांडव भये, रथवाहक नलराज ॥३६॥
मान सहित विष खाय कै, शंभु भये जगदीश।
बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो सीस ॥३७॥
जहाँ गाँठि तहँ रस नहीं, यह रहीम जग जोय।
मँडये तर की गाँठि में, गाँठि गाँठि रस होय ॥३८॥
टूटे सुजन मनाइए, जो टूटै सौ वार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार ॥३९॥
जलहि मिलाय रहीम ज्यों, कियो आप सम छीर।
अँगवहि आपुहि आप सहि, सकल आँच की भीर ॥४०॥
जब लगि जीवन जगत में, सब सुख मिलन अगोट।
रहिमन फूटे गोट ज्यों, परत दुहुन सिर चोट ॥४१॥
सबै कहावै लसकरी, सब लसकर कहि जाय।
रहिमन सेल्ह जोई सहै, सोई जगीरै खाय ॥४२॥

अच्युत - चरण - तरंगिणी, शिव-सिर-मालति-माल ।
हरि न बनाओ सुरसरी, कीजै इंदवभाल ॥४३॥
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।
रहिमन मूलहिं सींचिबो, फूलहिं फलहि अघाय ॥४४॥
रहिमन नीच पतंग तें, नित प्रति लाभ बिकार ।
नोर चोरावति संपुटी, मारु सहत घरियार ॥४५॥
हरिमन बात अगम्य की, कहन सुनन की नाहिं ।
जे जानत ते कहत नहिं, कहत ते जानत नाहिं ॥४६॥
ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों ।
तातै जारै अंग, सोरे पै कारो लगै ॥४७॥
रहिमन पुतरी श्याम, मनो जलज मधुकर लसै ।
कैधौं शालिग्राम, रूपे के अर्घा धरे ॥४८॥
रहिमन नीर पखान, बूड़े पै भीजै नहीं ।
तैसे मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं ॥४९॥
बिंदु मो सिंधु समान, को अचरज कासों कहै ।
हेरनहार हेरान, रहिमन आपुहि आपते ॥५०॥

---

(३) कबीर के दोहे

कबिरा प्रेम न चाखिया, चाखि न लीया साँइ।
सूने घर का पाहुना, ज्यों आवे त्यों जाइ॥ १॥
बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन को, मन नाहीं बिसराम॥ २॥
बिरह-भुअंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ।
राम वियोगी ना जिएँ, जिएँ तो बौरे होइ॥ ३॥
पूत पियारा पिता को, गोहन लागा धाइ।
लोभ मिठाई हाथ दै, आपन गया भुलाइ॥ ४॥
हरि संगति शीतल भया, मिटी मोह की ताप।
निसि बासर सुखनिधि लहा, अंतर प्रगटा आप॥५॥
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अँधियारा मिटि गया, दीपक देखा माहिं॥६॥
कथा कमंडल भरि लिया, अच्छर निर्मल नीर।
तन मन जीवन भरि पिया, प्यास न मिटी सरीर॥ ७॥
भारी कहूँ तो बहु डरूँ, हलका कहूं तो झूठ।
मैं का जानौं राम को, नैनौं कभी न डीठ॥ ८॥
आस एक जिय राम की, दूजी आस निरास।
पानी माहैं घर करैं, ते भी मरे पियास॥ ९॥

ढोल दमामा दुकड़ी, सहनाई सँख भेरि।
अकसर चले बजाइ कै, है कोइ राखे फेरि ॥१०॥
कबिरा इस संसार में, घना मनुस मतिहीन।
राम नाम जानै नहीं, आये टापा दोन ॥११॥
कहा कियेा हम आइ करि, कहा करेंगे जाइ।
इत के भये न उत्त के, चाले मूल गँवाइ ॥१२॥
यह तन तो सब बन भया, कर्महि भये कुल्हारि।
आपहि आपको काटिहैं, कहै कबीर बिचारि ॥१३॥
मन जानै सब बात, जानत ही औगुन करै।
काहे की कुसलात, कर दीपक कूएँ परैं ॥१४॥
करता था सो क्यों किया, अब करि क्यों पछिताइ।
बोया पेड़ बबूर का, आम कहाँ ते खाइ ॥१५॥
उत तें कोइ न आवई, जासों पूछूँ धाइ।
इत तें सबही जात हैं, भार लदाइ लदाइ ॥ १६॥
आसा जीए, जग मरै, लोग मरी मरि जाय।
साँइ मुए धन संचते, जो उबरै सो खाय ॥१७॥
स्वामी होना सो रहा, दूरा होना दास।
गाँडर आनी ऊन को, बाँधी चरै कपास ॥१८॥
रासि पराई राखता, खाया घर का खेत।
औरन को परबोधता, मुख में परिया रेत ॥१९॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
एकै आखर पीउ का, पढ़े सो पंडित होय ॥२०॥

ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय।
सुबरन कलस सुरा भरा, साधो निंदा सोय ॥२१॥
काजर केरी कोठरी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, रहै राम की ओट ॥२२॥
संत न छाँड़ै संतई, कोटिक मिलै असंत।
चँदन भुअंगम बैठिया, सीतलता न तजंत ॥२३॥
कबिरा खालिक जागिया, और न जागै कोय।
जागै विषयी बिष भरा, दास बंदगी होय ॥२४॥
कबिरा हरदी पीयरी, चूना उज्जर माइ।
रामसनेही यों मिलै, दूनों बरन गँवाइ ॥२५॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
अपना तन सीतल करै, औरन को सुख होय ॥२६॥
भूखा भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग।
भाँड़ा गढ़ि जिन मुख दिया, सोई पूरन जोग ॥२७॥
जाको जेता निरमया, ताको तेता होय।
रत्ती घटै न तिल बढ़े, जो सिर कूटै कोय ॥२८॥
साईं से सब होत है, बंदे से कछु नाहिं।
राई तें परबत करै, परबत राई माहिं ॥२९॥
बैद मुआ, रोगी मुआ, मुआ सकल संसार।
एक कबीरा ना मुआ, जेहिके राम अधार ॥३०॥
हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाहिं।
ऐसा कोई ना मिलै, पकड़ि छुड़ावै बाहिं ॥३१॥

कमोदनी जलहर बसै, चंदा बसै अकास।
जो जाही की भावना, सेा ताही के पास ॥३२॥
झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
खलक चबैना काल का, कछु मुख में, कछु गोद ॥३३॥
दोष पराये देखि करि, चला हसंत हसंत।
अपने चित्त न आवई, जिनको आदि न अंत ॥३४॥
निंदक दूरि न कीजिए, दीजै आदर मान।
निरमल तन मन सब करै, बकि बकि आनहिं आन ॥३५॥
कबिरा घास न निंदिए, जो पावों तर होय।
उड़िके परै जो आँखि में, खरा दुहेला होय ॥३६॥
बस्तु कहीं ढूँढ़े कहीं, केहि बिधि आवै हाथ।
कह कबीर तब पाइए, भेदी लीजै साथ ॥३७॥
सिख को ऐसा चाहिए, गुरु को सरबस देय।
गुरु को ऐसा चाहिए, सिख का कछू न लेय ॥३८॥
पपिहा पन को ना तजै, तजै तो तन बेकाज।
तन छूटे तो कछु नहीं, पन छूटे है लाज ॥३९॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटे उँजोरा होय ॥४०॥
सूरे के तो सिर नहीं, दाता के धन नाहिं।
पतिबरता के तन नहीं, सुरत बसै पिउ माहिं ॥४१॥
दाता के है धन घना, सूरे के सिर बीस।
पतिबरता के तन सही, पति राखै जगदीस ॥४२॥

कबिरा संगति साधु की, ज्यों गंधी की बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥४३॥
सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुनै फरियाद ॥४४॥
सुख के माथै सिल परै, नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख की, पल पल नाम उपाय ॥४५॥
माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर ॥४६॥
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुआँ तो दस दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥४७॥
साखी लाये बचन करि, इत उत अच्छर काटि।
कह कबीर कब लगि जिए, जूठी पत्तल चाटि ॥४८॥
कुसल कुसल ही पूछते, जग में हार न कोय।
जरा मुई ना भय मुआ, कुसल कहाँ से होय ॥४९॥
गाँठी होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देहि।
आगे हाट न बानियाँ, लेना होय सो लेहि ॥५०॥
तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीं, देखा ठोंकि बजाय ॥५१॥
बाँबी कूटे बावरे, साँप न मारा जाय।
मूरख बाँबी ना डसै, सर्प सबन को खाय ॥५२॥
मूरख के समझावते, ज्ञान गाँठ का जाय।
कोयला होय न ऊजला, सो मन साबुन लाय ॥५३॥

चाह मिटी चिंता गई, मनुआँ बेपरवाह ।
जिनको कछू न चाहिए, सोई साहंसाह ॥५४॥
गोधन गजधन बाजिधन, और रतनधन खान ।
जो आवै संतोष धन, सब धन धूर समान ॥५५॥
जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय ।
यह आपा तूँ डाल दे, दया करै सब कोय ॥५६॥
खोदखाद धरती सहै, काटकूट बनराय ।
कुटिल बचन साधू सहै, और से सहा न जाय ॥६७॥
साँचे साप न लागई, साँचे काल न खाय ।
साँचे को साँचा मिलै, साँचे माहिं समाय ॥५८॥
रूखा सूखा खाय करि, ठंडा पानी पीव ।
देखि पराई चूपड़ी, क्यों ललचाओ जीव ॥५९॥
आधी औ रूखी भली, सारी तो संताप ।
जो चाहेगा चूपड़ी, बहुत करेगा पाप ॥६०॥
प्रेम प्रीति से जो मिलै, तासों मिलिए धाय ।
अंतर राखे जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥६१॥
नवन नवन बहु अंतरा, नवन नवन बहु बान ।
यह तीनों बहुतै नवैं, चीता चोर कमान ॥६२॥

---

(४) सूरदास के पद

(राग सारंग)

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीन्हों तू कब जसुदा जायो॥
कहा करैं या रिस के मारे खेलनहूँ नहिं जात।
पुनि पुनि कहत कौन है माता कौन है तेरो तात॥
गोरे नंद यशोदा गोरी तुम कत साँवल गात।
चुटकी दै दै ग्वाल सुनावत हँसत सबै मुसुकात॥
तू मोही को मारन सीखी दाउहि कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत ये बातें सुनि सुनि रीझै॥
सुनो कान्ह बलभद्र चवाई जन्महि को वह धूत।
सूर श्याम मोहि गोधन की सौं मैं माता तू पूत॥ १॥

(राग बिहागरो)

खेलन दूरि जात कत कान्हा ?
आज सुनो मैं हाऊ आयो तुम नहिं जानत नान्हा॥
एक लरिका अबहीं भजि आयो रोवत देख्यों ताहि।
कान काटि वह लेत सबनि को लरिका जानत जाहि॥
चलो न बेगि सबेरे जैये भाजि आपनो धाम।
सूर श्याम यह बात सुनत ही बोलि लिये बलराम॥ २॥

(राग कान्हरो)

हँसि जननी सों बात कहत हरि देख्यो मैं बृंद्राबन नीके।
अति रमणीक भूमि द्रुम बेली कुंज सघन निरखत सुख जी के॥
जमुना के तट धेनु चराई कहत बात आगे जननी के।
भूख मिटी बन फल के खाये मिटी प्यास जमुना जल पीके॥
सुनति यशोमति सुत की बातें अति आनंद मगन मन नीके।
सूरदास प्रभु विश्वभरन जो चोर भये व्रज जन के ही के॥ ३॥

(राग गौरी)

देखि फिरे हरि ग्वालि दुवारे।
तब यह बुद्धि रची अपने मन भीतर नाँघि परे पिछवारे॥
सूने भवन कहूँ कोउ नाहीं मनु याही को राज।
भांडे धरत उघारत मूँदत दधि माखन के काज॥
रैनि जमाय धरेउ हो गोरस परयो श्याम के हाथ।
लै लै खात अकेलो आपुन सखा नहीं कोउ साथ॥
आहट सुनि युवती घर आई देख्यो नंदकुमार।
सूर श्याम मंदिर अँधियारे निरखत बारंबार॥ ४॥

(राग सारंग)

चरावत बृंदाबन हरि गाय।
सखा मिले सँग सबल सुदामा डोलत हैं सुख पाय॥
क्रीड़ा करत जहाँ तहँ सब मिलि अति आनंद बढ़ाय।
बगरि गई गैयाँ बन बीथिन देखी अति बहुताय॥

कोउ गये बंशीवट शीतल यमुना तट अति हो सुखदाय।
सूर श्याम तहँ बैठि बिचारत सखा कहाँ बिरमाय ॥ ५ ॥

(राग कान्हरो)

आजु बने बनतें ब्रज आवत।
नाना रंग सुमन की माला नंदनँदन उर पर छवि पावत ॥
संग गोप गोधन गन लीन्हें नाना गति कौतुक उपजावत।
कोउ गावत, कोउ नृत्य करत कोउ, कोउ उघट करताल बजावत ॥
राँभति गाय बछाहित सुधि करि प्रेम उमगि थन दूध चुआवत।
जसुमति बोलि उठी हरषित ह्वै कान्हर धेनु चराये आवत ॥
इतनी कहत आइ गये मोहन जननी दोउ हिये लै लावत।
सूरश्याम के कृत यशुमति सो ग्वाल बाल कहि प्रगट सुनावत ॥६॥

(राग सारंग)

चरावत बृंद्रावन हरि धेनु।
ग्वाल सखा सब संग लगाये खेलत है करि चैन ॥
कोउ गावत कोउ मुरलि बजावत कोउ बिषान कोउ बेन।
कोउ निर्तत कोउ उघटि तारि दै जुरि ब्रज बालक सैन ॥
विविध पवन जहँ तहँ बहे निसि दिन सुभग कुंज घन ऐन।
सूरश्याम निज धाम बिसराय आवत यह सुख लैन ॥ ७ ॥

(राग धनाश्री)

बृंद्रावन मोको अति भावत।
सुनहु सखा तुम सुबल सुदामा ब्रज तें बन गोचारन आवत ॥

कामधेनु सुरतरु सुख जितने रमासहित बैकुंठ भुलावत।
यह वृंदाबन यह यमुना तट ये सुरभी अति सुखद चरावत॥
पुनि पुनि कहत श्याम श्रीमुख सों तुम मेरो मन अतिही सुहावत।
सूरदास सुनि ग्वाल चकित भये यह लीला हरि प्रगट दिखावत॥८॥

(राग सारंग)

रीझत ग्वाल रिझावत श्याम।
मुरलि बजावत सखन बुलावत सुबल सुदामा लै लै नाम॥
हँसत सखा कर तारी दै दै नाम हमारो मुरली लेत।
श्याम कहत अब तुमहुं बुलावहु अपने कर ते, ग्वालनि देत॥
मुरली लै लै सबै बजावत काहू पै नहिं आवै रूप।
सूरश्याम तुमरेहि मुख बाजति कैसे देखो रास अनूप॥ ९॥

(राग बिलावल)

हरषित भये नंदलाल बैठि तरु छाँह की॥
बंसी बट अति सुखद और द्रुम पास चहूँ हैं।
सखा लये तहँ गये धेनु बन चरत कहूँ हैं॥
बैठि गये सुख पाय के ग्वाल बाल लै साथ।
काँवरि झोरी लये सखा हौ आनि नवायो माथ॥
आनँद दये मधु छाक तुरत बृन्द्राबन आये।
बिंजन सहस प्रकार यशोदा बनहि पठाये॥ १०॥

(राग कल्याण)

कमल मुख शोभित सुंदर बेनु।
मोहत राग अलापत गावत आवत चरबे धेनु॥

कुंचित केश सुदेश बदन पर जनु साज्यौ अलि सैनु ।
सहि न सकत मुरली मधु पीवत चाहत अपनो ऐनु ॥
भृकुटी मनो कर चाप आपु लै भयो सहायक मैनु ।
सूरदास प्रभु अधर सुधा लगि उपज्यो कठिन कुचैनु ॥ ११ ॥

(राग सारंग)

चितैबो छाँड़ि दे री राधा ।
हिलि मिलि खेलि श्याम सुंदर सों करति काम को बाधा ॥
की बैठी रह भवन आपनो ह्याँ काहे को आवै ।
मृगनयनी हरि को मन मोहति जब तू देखि दुहावै ॥
कबहुँक कर तें गिरति दोहनी कबहूँ बिसरति नेई ।
कबहूं वृषभ दुहत है मोहन ना जानों का होई ॥
कौन मंत्र जानति तू प्यारी पढ़ि डारति हरि गात ।
सूरश्याम को धेनु दुहन दे कहत यशोदा मात ॥ १२ ॥

(राग बिलावल)

मोसों बात सुनो ब्रजनारी ।
यह उपखान चलत है जग में तुम सों आज उघारी ॥
कबहूं बालक मुँह न दीजिए मुँह न दीजिए नारी ।
जाइ मन करै सोइ करि डारै मूढ़ चढ़ति है भारी ॥
बात कहति अठिलात जाति सब हँसति देति कर तारी ।
सूर कहा ये हमको जानहिं छाछहिं बेचनहारी ॥ १३ ॥

(राग गौरी)

उपमा हरि तन देखि लजाने ।
कोउ जल में कोउ बननि रहे दुरि कोउ कोउ गगन समाने ॥
मुख निरखत शशि गयो गगन को तड़ित दशन छबि हेरी ।
मीन कमल, कर चरण नयन डर बन में कियो बसेरी ॥
भुजा देखि अहिराज लजाने, बिवरनि पैठे धाय ।
कटि निरखत केहरि डर माने, बन बन रहे दुराय ॥
गारी देहि कबिन को बरतन श्रीअँग पटतर देत ।
सूरदास हमको बिलमावत नाम हमारो लेत ॥ १४ ॥

(राग कल्याण)

यह कछु भारेहि भाय भई ।
निरखत बदन नंदनंदन को और हती सुगई ॥
हिरदय जानि प्रेम अंकुर जर सत पताल गई ।
सो द्रुम पसरि सिखर अंबर लों सब जग छाय लई ॥
बचन सुपत्र मुकुर अबलोकनि गुणनिधि पुहुपमई ।
परस्परहि अनुराग सींचि सुख लगी प्रमोद जई ॥
मन के सकल मनोरथ पूरन सो भर भार नई ।
सूरदास फल गिरिधर नागर मिलि रस रीति ठई ॥ १५ ॥

(मुरली के संबंध में)

(राग गौरी)

मुरली श्याम मूड़ चढ़ाई ।
बारंबार अधर धरि याको कान्हा गर्व कराई ॥

तब तैं गनति नहीं यह काहू जब तैं उन मुँह लाई।
ना जानिए और करिहैं का देखति नहीं भलाई॥
अपने बश्य किये नँदनंदन बैरिन हमको आई।
सूरज प्रभु एते पर माई मानत बहुत बड़ाई॥ १६ ॥

(राग बिलावल)

वाही के बल धेनु चरावत।
वहै लकुट जाकी वह मुरली बातैं वे सुख पावत॥
वह अति निठुर वे बातें अतिही मिलिकै घात बनावत।
बन ही बन में रहत निरंतर ताहि बजावत गावत॥
वाके बचन अमृत हैं इनको ताहि अधर रस प्यावत।
सूर श्याम बनवारी कहियत वह बनबाँस कहावत॥ १७॥

(राग गौरी)

अधर रस मुरली लूटि करावति।
आपुन बार बार लै अँचवति जहाँ तहाँ ढरकावति॥
आजु महा चढ़ि बाजो वाकी जोइ जोइ करै बिराजै।
करि सिंहासन बैठि अधर सिर छत्र धरे वह गाजै॥
गनति नहीं अपने बल काहुहि श्यामहि ढीठ कराई।
सुनहु सूर बन की बनवासिनि व्रज में भई रजाई॥ १८॥

(राग धनाश्री)

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुनु री सखी! यद्यपि नँदलालहि नाना भाँति नचावति॥

राखति एक पाँव ठाढ़े करि अति अधिकार जनावति।
कोमल तनु आज्ञा करवावति कटि टेढ़े ह्वै आवति॥
भृकुटी नयन अधर नासापुट हम पर कोप कँपावति।
सूर पास ना जानि कोप करि धर ते शीश डुलावति॥१६॥

(राग सारंग)

ग्वालिनि कतहि ओरहनो देहु।
बूझहु धौं यह बात श्याम सों जित दुख जरेउँ सनेहु॥
जनमत ही हम भईं बिरतिचित छाँड़ि ग्राम गुन गेहु।
एकहि पाय रहत नित ठाढ़ो हिम ग्रीषम ऋतु मेहु॥
तज्यो मूल साखा सुपत्र सब सोच सुखानी देहु।
मुरै न तनु मनु अगीनी सुलाकत विकट बनायो नेहु॥
कत हौ बकति बाँसुरी जानै करि करि तामस तेहु।
सूर श्याम को तुमहि रिझै करि क्यों न अधर रस लेहु॥२०॥

(राग बिलामल)

मेरे दुख को ओर नहीं।
षट ऋतु शीत उष्ण बरषा मैं ठाढ़े पायँ रही॥
कसकी नहीं नेकहूँ काटत घामैं राखो डारि।
अगिन सुलाक देत नहिं मुरकी बनै बनावति जारि॥
तुम जानति मोहिं बँसुरियाँ अगिन झाँप दै आई।
सूर श्याम ऐसो तुम लेहु न खिझति कहा हौ माई॥२१॥

(राग धनाश्री)

हौं हरि सब पतितन को नायक।
को करि सकै बराबरि मेरी एते मन को लायक॥
जौं तुव अजामील सों कीनी सो पाती लिखि पाऊँ।
होय बिसास भलो जिय अपने औरो पतित बुलाऊँ॥
सिमिटि जहाँ तहँ ते सब कोऊ आय जुरैं एक ठौर।
सबहि मिलै पायनि मैं पारौं यहै हमारी भेंट॥
ऐसो कितिक बनाव प्राणपति सुमिरौं हौं भयो आड़ो।
अब की बेर निबेर लेहु प्रभु सूर पतित को टाँड़ो॥२२॥

(राग केदारो)

कृपा अब कीजिए बलि जाऊँ।
नाहिन मेरें अनत कहूँ पद-अंबुज बिनु ठाऊँ॥
हौं अशुचो अकृती अपराधी सनमुख होत लजाऊँ।
तुम कृपाल करुणानिधि केशव अधम-उधारन नाऊँ॥
काके द्वार जाय हौं ठाढ़ो देखत काहि सुहाऊँ।
अशरणशरण विरद व्यापक तुम हौं अति कुटिल सुभाऊँ॥
कलुषी परम मलीन हीन हो संतेउ तौ न बिकाऊँ।
सूर पतितपावन पद-अंबुज पारस क्यों परसाऊँ॥
सुंदर श्याम कमल दल लोचन यशुमति नंद दुलारे।
सूर श्याम को सरबस अरप्यो अब काके हम लेहिं उधारे॥२३॥

(कृष्ण का मथुरा गमन)

(राग काफी)

मधुबन तुम कत रहत हरे ?
बिरह बियोग श्याम सुंदर के ठाढ़े क्यों न जरे ?
तुम हो निलज लाज नहिं तुमको फिर सिर पुहुप धरे ।
ससा स्यार अरु बन के पखेरू धिक्-धिक् सबनि करे ॥
कौन काज ठाढ़े रहे बन मे काहे न उकठि परे ।
कपट हेत कीन्हों हरि हम सां खोट न होहि खरे ॥
जब वै मोहन वेनु बजावत शाखा टेकि खरे ।
मोहे थावर अरु जड़ जंगम मुनिगन ध्यान टरे ॥
नैनन तें बिछुरे नँदनंदन चित ते नाहिं टरे ।
सूरदास प्रभु विरह दवानल नख शिख लों पसरे ॥२४॥

(उद्धव का मथुरा से सँदेशा लेकर आना)

गोपियों का बचन

(भ्रमर गीत)

(राग सारंग)

निर्गुण कौन देश को बासी ?
मधुकर हँसि समुझाय सौंह दै बूझत साँचु न हाँसी ॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ?
कैसो बरन, भेष है कैसो, वहि रस में अभिलाषी ॥
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे कहेगो गाँसी ।
सुनत मौन ह्वै रहेउ ठग्यो सो सूर सबै मति नासी ॥२५॥

(राग केदारा)

नाहिंन रहेउ मन में ठौर ।
नँदनंदन अछत कैसें आनिए उर और ॥
चलत चितवनि दिवस जागत सपन सोवत राति ।
हृदय ते वह श्याम मूरति छिन न इत उत जाति ॥
कहत कथा अनेक ऊधो लोक लाभ दिखाय ।
कहा करौं तन प्रेम पूरन घट न सिंधु समाय ॥
श्याम गात सरोज आनन ललित अति मृदु हास ।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास ॥२६॥

(राग मलार)

ब्रज जन सकल श्याम व्रत धारी ।
बिन गोपाल और नहिं जानत आन कहैं व्यभिचारी ॥
योग मोट सिर बोझ आनि कै कत तुम घोष उतारी ।
इतनी दूर जाहु चलि काशी जहाँ बिकति है प्यारी ॥
यह सँदेश नहिं सुनैं तिहारो है मंडली अनन्य हमारी ।
जो रस रीति करी हरि हमसों वह कत जात बिसारी ॥
महा मुक्ति कोऊ नहिं बूझै और पदारथ चारी ।
सूरदास स्वामी मनमोहन मूरति की बलिहारी ॥२७॥

(राग धनाश्री)

प्रकृति जोइ जाके अंग परी ।
स्वान पूँछ कोटिक जो लागे सूधि न काहु करी ॥

जैसे काग भद्र नहिं छाड़ै जनमत जौन घरी।
धोये रंग जात कहु कैसे ज्यों कारी कमरी॥
ज्यों अहि डसत उदर नहिं पूरत ऐसी धरनि धरो।
सूर होउ सो होउ साच नहिं तैसे है एउरी॥ २८॥

(राग जैतश्री)

मुकुति आनि मंदे में मेली।
समुझि सगुन लै चले न ऊधो ये सब तुम्हरी पूँजि अकेली॥
कै लै जाहु अनतही बेचन कै लै जाहु जहाँ विष बेली।
याहि लागि को मरै हमारे वृन्दाबन पायन तर पेली॥
सीस धरे घर घर कत डोलत एक मते अब भई सहेली।
सूर यहाँ गिरिधरन छबीलो जिनकी भुजा अंश गहि मेली॥२९॥

(राग मलार)

संदेसनि मधुबन कूप भरे।
जो कोउ पथिक गये हैं ह्याँ ते फिरि नहिं गवन करे॥
कै वै श्याम सिखाइ समोधे कै वै बीच मरे।
अपने नहिं पठवत नँदनंदन हमरेउ फेरि धरे॥
मसि खूटी कागज जब भीजे सर दौ लागि जरे।
पाती सूर लिखे क्योंकरि जो पलक कपाट अरे॥ ३०॥

(राग नट)

मधुबनिया लोगनि को पतियाय।
मुख औरै अंतरगत औरै पतियाँ लिखि पठवत हैं बनाय॥

ज्यों कोइल सुत काग जिआवत भाग भगति भोजनहिं खवाय।
कुहकुहाय आये बसंत ऋतु अंत मिलै कुल अपने जाय॥
जैसे मधुकर पुहुप बास लै फेरि न बूझै बातहु आय।
सूर जहाँ लौं श्याम गात हैं तिनसों क्यों कीजिए लगाय॥ ३१॥

(राग सारंग)

ऊधो तुम अपनो जतन करौ।
हित की कहत कुहित की लागै बिन ही काज ररौ॥
जाय करो उपचार आपनो हम जो कहत हैं जो की।
कछू कहत कछु ही कहि डारत धुनि देखियत नहिं नीकी॥
साधु होय तेहि उत्तरु दीजै तुम सों मानी हारि।
याही तें तुम्हें नँदनंदन जी पठये वहाँ है टारि॥
मथुरा बेगि गहहु इन पायन उपज्यौ है तन रोग।
सूर सेा बैद बेगि ढूँढ़ो भये अर्द्धजल जोग॥ ३२॥

(राग सारंग)

छाँडु मन हरि बिमुखन को संग।
कहा भयो पय पान कराये बिष नहिं तजत भुवंग॥
जाके संग कुबुद्धि ऊपजै परत भजन में भंग।
काम क्रोध मद लोभ मोह में निसि दिन रहत उमंग॥
कागहि कहा कपूर खवाये स्वान न्हवाये गंग।
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषण अंग॥
पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निषंग।
सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रंग॥ ३३॥

(राग नट)

जौ लौं सत्य सरूप न सूझत ।
तौ लौं मनु मणि कंठ बिसारे फिरत सकल बन बूझत ॥
अपनो ही मुख मलिन मंदमति देखत दरपन माँह ।
ता कालिमा मेटिबे कारन पचत पखारन छाँह ॥
तेल तूल पावक पुट धरि धरि बनहि न बिना प्रगासतु ।
कहो बनाय दीप की बाती कैसे कै तम नासतु ॥
सूरदास जब यह मति आई वे दिन गये अलेखे ।
का जानै दिनकर की महिमा अंधनयन बिनु देखे ? ॥ ३४ ॥

(राग सारंग)

भजन बिनु जीवत हैं जैसे प्रेत ।
मलिन मंदमति डोलत घर घर उदर भरन के हेत ॥
मुख कटु वचन बकत नित निंदा सुजन सबै दुख देत ।
कबहुँ पाप कै पावत पैसा गाड़ि धूरि महँ देत ॥
गुरु ब्राह्मण अच्युत जन सज्जन जात न कबहुँ निकेत ।
सेवा नहिं गोविंद चरन को भवन नील को खेत ॥
कथा नहीं गुनगीत सुयश हरि साधन देव अनेत ।
रसना सूर बिगारै कहाँ लौं बूड़त कुटुम समेत ॥३५॥

(राग काफी)

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै ।
यह व्यौपार तिहारो ऊधो ऐसे ही फिरि जैहै ॥

जापैं लै आये हौ मधुकर ताके उर न समैहै ।
दाख छाँड़ि कै कटुक निबौरी को अपने मुख खैहै ॥
मूरी के पातन को कोएना को मुक्ताहल दैहै ।
सूरदास प्रभु गुनहि छाड़ि के को निरगुन निरबैहै ? ॥३६॥

(राग धनाश्री)

लरिकाई को प्रेम कहो अलि कैसे करि के छूटत ?
कहा कहौं ब्रजनाथ चरित अब अंतर गति यों लूटत ॥
चंचल चाल मनोहरि चितवनि वे मुसकानि मंद धुनि गावत ।
नटवर भेष नंदनंदन को वह बिनोद गृह बन ते आवत ॥
चरण कमल की सपथ करति हौं यह सँदेस मोहि बिष सम लागत ।
सूरदास मोहि निमिष न बिसरत मूरित सोवत जागत ॥ ३७ ॥

(राग धनाश्री)

अँखियाँ हरि दरसन की भूखी ।
कैसे रहैं रूप रस साँची ये बतियाँ सुनि रूखी ?
अवधि गनत एकटक मगु जोवत तब एती नहिं झूखी ।
अब इन योग सँदेसनि ऊधो अति अकुलानी दूखी ॥
बारक वह मुख फेरि दिखावहु दुहि पय पिबत पतूखी ।
सूर सकति मति नाउ चलावहु ज्यों सरिता भर सूखी ॥ ३८ ॥

(राग सारंग)

हमारे हरि होरिल की लकरी ।
मन बच कर्म नंदनंदन सों उर यह दृढ़ पकरी ॥

जागत सोवत सपने मों मुख कान्ह कान्ह जक री।
सुनतहि जोग लगत ऐसो अलि ज्यों करुई ककरी॥
सोई व्याधि हमहिं लै आये देखी सुनी न करी।
यह तो सूर तिन्हें ले दीजै जिनके मन चकरी॥ ३९॥

(राग धनाश्री)

रहु रे मधुकर मधु मतवारे।
कहा करौं निरगुन लै क हौं जीवहिं कान्ह हमारे?
लोटत बीच पराग पंक में पचत न आपु सम्हारे।
बारंबार सरस मदिरा की अपरस कहा उबारे॥
तुम जानत हमहूं वैसी हैं जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सबको बिलमावत जेते आवत कारे॥ ४०॥

(राग मलार)

नँदनंदन के बिछुरे अँखियाँ उपमा योग नहीं।
कंज खंज मृग मीन न होहीं कविजन वृथा कहीं॥
कंज होति मुँदि जाति पलक में जामिनि होति जहीं।
खंज होति उड़ि जाति छनक में प्रीतम जित तितहीं॥
होतीं मृग रहतीं निसि बासर चंदबदन ढिगहीं।
रूप सरोवर के बिछुरे कहा जीवत मीन कहीं॥
झरना लौं ये झरत रैन दिन उपमा सकल बहीं।
सूरदास आसा मिलिबे की अब घट साँस रहीं॥ ४१॥

(राग मलार)

कबहुँ सुधि करत गोपाल हमारी ?
पूछत नंद पिता ऊधो सों अरु जसुदा महतारी ॥
बहुतै चूक परी अनजानत का अब के पछिताने ?
वासुदेव घर भीतर आये मैं अहीर कै जाने ॥
पहिले गर्ग कह्यो हुतो हम सों संग देत गयो भूली ।
सूरदास स्वामी के बिछुरे रात दिवस है सूली ॥ ४२ ॥

(राग धनाश्री)

ऊधोजी हमहिं न जोग सिखैए ।
जेहि उपदेस मिलें हरि हमको सो व्रत नेम बतैए ॥
मुक्ति रहो घर बैठि आपने, निरगुन सुनि दुख पैए ।
जेहि सिर केस कुसुम भरि गूंथे तेहि किमि भसम चढ़ैए ॥
जानि जानि सब मगन भए हैं आपु न आपु लखैए ।
सूरदास प्रभु गुनत न या बिधि बहुरि कि या व्रज ऐए ॥ ४३ ॥

(राग नट)

कहत कोउ परदेसी की बात ।
मंदिर अरध अवधि बदि हम सों हरि अहार टरि जात ॥
ससिरिपु बरष, सूररिपु युग बर, हररिपु किए फिरै घात ।
मधि पंचक लै गए श्यामघन आय बनी यह बात ॥
नखत बेद ग्रह जोरि अर्द्ध करि को बरजै हम खात ?
सूरदास प्रभु तुमहिं मिलन को कर मींजत पछितात ॥ ४४ ॥

(राग मलार)

मधुकर इतनी कहियो जाय।
अति कृशगात भई ये तुम बिन परम दुखारी गाय॥
जलसमूह बरसत दोउ आँखें हुँकति लीने नावँ।
जहाँ तहाँ गोदोहन कीनों सूँघति सोई ठावँ॥
परति पछार खाय छिन ही छिन अति आतुर ह्वै दीन।
मानहुँ सूर काढ़ि डारी है बारि मध्य ते मीन॥ ४५॥

(राग धनाश्री)

नैना भए अनाथ हमारे।
मदन गोपाल वहाँ ते सजनी सुनियत दूरि सिधारे॥
वे जलसर हम मीन बापुरी कैसे जियहिं निनारे।
हम चातकी चकोर श्यामघन बदन सुधानिधि प्यारे॥
मधुबन बसत आस दरसन की जोइ नैन मग हारे।
सूरज श्याम करी पिय ऐसी मृतक हुते पुनि मारे॥ ४६॥

(५) बिहारी के दोहे

मेरो भवबाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परे, श्याम हरित दुति होय ॥१॥
सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
एहि बानक मो मन बसो, सदा बिहारीलाल ॥२॥
जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचे वृथा, साँचे राचे राम ॥३॥
दीरघ साँस न लेइ दुख, सुख साईं मति भूल।
दई दई क्यों करत है, दई दई सो कबूल ॥४॥
मरत प्यास पिंजरा पर्‌यो, सुआ समय के फेर।
आदर दै दै बोलियत, बायस बलि की बेर ॥५॥
कनक कनक ते सौगुनो, मादकता अधिकाय।
यह खाये बौरात है, वह पाये बौराय ॥६॥
बड़े न हूजै गुनन बिन, विरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़ो न जाय ॥७॥
को कहि सकत बड़ेन सों, होत बड़ाई भूल।
दीने दई गुलाब के, इन डारन वे फूल ॥८॥
जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीति बहार।
अलि अब रही गुलाब की, अपत कटीली डार ॥९॥

एहि आसा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
ह्वैहैं बहुरि बसंत ऋतु, इन डारन वे फूल ॥१०॥
नर की अरु नल-नीर की, एकै गति करि जोय।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊँचो होय ॥११॥
कहैं यहै श्रुति स्मृति ह्वै, सबै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक ही, राजा, पातक, रोग ॥१२॥
बढ़त बढ़त संपति-सलिल, मन-सरोज बढ़ि जाय।
घटत घटत फिरि ना घटै, बरु समूल कुम्हिलाय ॥१३॥
कैसे छोटे नरन तें, सरत बड़न के काम।
मढ़ो दमामो जात है, कहुँ चूहे के चाम ॥१४॥
कोटि जतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहि बीच।
नल-बल जल ऊँचो चढ़ै, अंत नीच को नीच ॥१५॥
प्यासे दुपहर जेठ के, थके सबै जल सोधि।
मरुधर पाय मतीरहू, मारू कहत पयोधि ॥१६॥
सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर ॥१७॥
तंत्रीनाद कवित्त रस, सरस रास रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग ॥१८॥
कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ ॥१९॥
फिरि घर को नूतन पथिक, चले चकित चित भागि।
फूल्यो देखि पलास बन, समुहें समुझि दवागि ॥२०॥

मानहु बिधि तन अच्छ छबि, स्वच्छ राखिबे काज ।
दृग पग पोंछन को कियो, भूषण पायंदाज ॥२१॥
वर जीते शर मैन के, ऐसे देखे मैं न ।
हरनी के नैनान ते, हरि नीके ये नैन ॥२२॥
यद्यपि सुंदर सुघर पुनि, सगुनो दीपक देह ।
तऊ प्रकाश करै तितो, भरिए जितो सनेह ॥२३॥
इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरजोई नाहिं ।
देखत बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहिं ॥२४॥
अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठ पट जोति ।
हरित बाँस की बाँसुरी, इंद्र धनुष रँग होति ॥२५॥

---

(६) परशुराम-संवाद

[रामचंद्रिका से]

दोहा

विश्वामित्र बिदा भए, जनक फिरे पहुँचाइ ।
मिले आगिली फौज को, परशुराम अकुलाइ ॥ १ ॥

चंचरीक छंद

मत्तदंति अमत्त ह्वै गये देखि देखि न गज्जहीं ।
ठौर ठौर सुदेश केशव दुंदुभी नहिं बज्जहीं ॥
डारि डारि हथ्यार शूरज जीव लै लै भज्जहीं ।
काटि कै तनत्राण एकै नारिवेषन सज्जहीं ॥ २ ॥

दोहा

बामदेव ऋषि सों कह्यो, परशुराम रणधीर—
'महादेव को धनुष यह, को तोरेउ बलबीर ?" ॥ ३ ॥
वामदेव—"महादेव को धनुष यह, परशुराम ऋषिराज !
तोरेउ रा," यह कहत ही, समुझेउ रावणराज ॥ ४ ॥

चंद्रकला छंद

परशुराम—"वर बाण शिखीन अशेष समुद्रहि,
सोखि सखा सुखही तरिहौं ।
पुनि लंकहि औटि कलंकित कै,
फिरि पंक कलंकहि की भरिहौं ॥

भल भूँजिकै राख सुखै करिकै,
दुख दीरघ देवन को हरिहौं ।
शितकंठ के कंठन को कठुला,
दशकंठ के कंठन को करिहौं ॥ ५ ॥

संयुता छंद

परशुराम—"यह कौन को दल देखिए ?"
वामदेव—"यह राम को प्रभु लेखिए ॥"
परशुराम—"कहि, कौन राम ? न जानियो ।"
वामदेव—"शर ताड़का जिन मारियो" ॥ ६ ॥

विजय छंद

परशुराम—"ताडुका संहारी, तिय न बिचारी,
कौन बड़ाई ताहि हने ?"
वामदेव—"मारीच हुते संग, प्रबल सकल खल,
अरु सुबाहु काहू न गने ॥
करि क्रतु-रखवारी, गुरु सुखकारी,
गौतम की तिय शुद्ध करी ।
जिन रघुकुल मंड्यो, हर-धनु खंड्यो,
सीय स्वयंबर माँझ बरी" ॥ ७ ॥

दोहा

परशुराम—"हरहू होतो दंड द्वै, धनुष चढ़ावत कष्ट ।
देखो महिमा काल की, कियो सो नरशिशु नष्ट ॥ ८ ॥

विजय छंद

बोरौं सबै रघुवंश कुठार की
धार में बारन बाजि सरत्थहिं।
बाण की वायु उड़ाइ कै लच्छन
लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं॥
रामहिं बाम समेत पठै बन
कोप के भार में भूँजौं भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ
तौ आजु अनाथ करौं दशरत्थहिं" ॥ ९ ॥

सोरठा

राम देखि रघुनाथ, रथ ते उतरे वेगि दै।
गहे भरत को हाथ, आवत राम बिलोकियो ॥ १० ॥

दंडक

परशुराम—"अमल सजल घनश्याम वपु केशोदास,
चंद्रहू ते चारु मुख सुखमा को ग्राम है।
कोमल कमल दल दीरघ विलोचननि,
सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नाम है॥
बालक बिलोकियत पूरण पुरुष-गुण,
मेरो मन मोहियत ऐसो एक याम है।
बैर मानि वामदेव को धनुष तोरो इन,
जानत हौं बीस बिसे राम वेष काम है,, ॥ ११ ॥

गीतिका छंद

भरत—"कुश मुद्रिका समिधैं स्रुवा कुश औ कमंडल को लिये।
करमूल शर घन तर्कसी भृगुलात सी दरसै हिये॥
धनु बाण तीक्ष्ण कुठार केशव मेखला मृगचर्म सों।
रघुवीर! को यह देखिए रस वीरसात्विक धर्म सों" ॥१२॥

नाराच छंद

राम—"प्रचंड हैहयाधिराज दंडमान जानिए।
अखंड कीर्त्ति लेय भूमि देयमान मानिए॥
अदेव देव जे अभीत रक्षमान लेखिए।
अमेय तेज, भर्गभक्त, भार्गवेश देखिए" ॥१३॥

तोमर छंद

परशुराम—" सुनि रामचंद्र कुमार! मन वचन कीर्त्ति उदार॥"
राम—"भृगुवंश के अवतंस! मन वृत्ति है क्यहि अंश?" ॥१४॥

मदिरा छन्द

परशुराम—"तोरि शरासन शंकर को
शुभ सीय स्वयंवर माँझ वरी।
ताते बढ़्यो अभिमान महा
मन मेरीयो नेक न शंक करी" ॥
राम—"सो अपराध परो हम सों, अब,
क्यों सुधरै? तुम हूँ धौं कहो।"

परशुराम—"बाहु दै दोऊ कुठारहिं केशव,
आपने धाम को पंथ गहो" ॥ १५ ॥

कुंडलिया

राम—"टूटै टूटनहार तरु, बायुहि दीजत दोष।
त्यों अब हर के धनुष को, हम पर कीजत रोष ॥
हम पर कीजत रोष, कालगति जानि न जाई।
होनहार ह्वै रहै, मिटै मेटी न मिटाई ॥
होनहार ह्वै रहै, मोह मद सबको छूटै।
होइ तिनूका वज्र, वज्र तिनुका ह्वै टूटै" ॥१६॥

विजय छंद

परशुराम—"केशव है हयराज को माँस
हलाहल कोरन खाइ लियो रे।
ता लगि मेद महीपन को घृत
घोरि दियो न सिरानो हियो रे ॥
खीर षड़ानन को मद केशव
सो पल में करि पान लियो रे।
तौ लौं नहीं सुख जौ लहुं तू
रघुवंश को शोन सुधा न पियो रे" ॥१७।

तंत्री छंद

भरत—"बोलत कैसे भृगुपति ! सुनिए,
सो कहिए तन मन बनि आवौ।

आदि बड़े हो बड़पन राखौ,
जाने तुम सब जग यश पावौ ।।
चंदन हूँ में अति तन घसिए,
आगि उठै यह गुनि सब लीजै ।
हैहय मारे, नृपति सँहारे,
सो यश लै किन युग युग जीजै" ।।१८।।

नाराच छंद

परशुराम—"भली कही भरत्थ तैं उठाय अगि अंगतैं ।
चढ़ाउ चोपि चाप आय बाण ले निषंग तैं ।।
प्रभाउ आपनो देखाउ छोड़ि बाल भाइ कै ।
रिझाउ राजपुत्र मोहिं राम लै छुड़ाइ कै" ।।१९।।

सोरठा

लियो चाप जब हाथ, तीनिहु भैयन रोष करि ।
बरज्यो श्रीरघुनाथ, तुम बालक जानत कहा ।।२०।।

दोहा

राम—"भगवंतन सों जीतिए, कबहुँ न कीने शक्ति ।
जीती एकै बात में, केवल कीने भक्ति ।।२१।।

हरिगीत छंद

"जब हयो हैहयराज इन बिन छत्र क्षितिमंडल कख्यो ।
गिरि वेध षटमुख जीति तारकनंद को जब ज्यों हख्यो ।।

सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतनंदिनी।
वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भई जगवंदिनी" ॥२२॥

तोमर छंद

परशुराम—"सुनु राम शीलसमुद्र। तव बंधु हैं अति क्षुद्र॥
मम बाड़वानल कोप। अब कियो चाहत लोप" ॥२३॥

दोधक छंद

शत्रुघ्न—"हौ भृगुनंद बली जग माहीं।
राम बिदा करिए घर जाहीं॥
हौं तुम सों फिरि युद्धहि माँड़ौं।
क्षत्रियवंश को बैर लै छाँड़ौं" ॥ २४ ॥

तोटक छंद

यह बात सुनी भृगुनाथ जबै।
परशुराम—"कहि रामहिं लै घर जाहु अबै॥
इन पै जग जीवत जो बचिहौं।
रण हौं तुमसों फिरि कै रचिहौं॥ २५ ॥

दोहा

निज अपराधी क्यों हतौं, गुरु अपराधी छाँड़ि।
ताते कठिन कुठार अब, रामहि सों रण माँड़ि॥ २६ ॥

विजय छंद

भूतल के सब भूपन को
मद भोजन तो बहु भाँति कियोई।

मोद सों तारकनंद को मेद
पछ्यावरि पान सिरायो हियेाई ॥
खीर षड़ानन को मद केशव
सेा पल में करि पान लियेाई ।
राम तिहारेइ कंठ को शोणित
पान को चाहै कुठार कियेाई" ॥ २७ ॥

तोटक

लक्ष्मण—"जिनको हि अनुग्रह वृद्धि करै ।
तिनको किमि निग्रह चित्त परै ॥
जिनको जग अच्छत शीश धरै ॥
तिनको तन सच्छत कौन करै" ॥ २८ ॥

विशेषक छंद

परशुराम—"हाथ धरे हथियार सबै तुम शोभन हो ।
मारनहारहि देखि कहा मन छोभत हो ॥
छत्रिय के कुल ह्वै किमि बैनन दीन रचौ ।
कोटि करो उपचार न कैसेहु मीचु बचौ" ॥२९॥
लक्ष्मण—"छत्रिय ह्वै गुरु लोगन के प्रतिपाल करैं ।
भूलिहु तौ तिनके गुण औगुण जी न धरैं ॥
तौ हमको गुरु दोष नहीं अब एक रती ।
जो अपनी जननी तुमही सुख पाइ हती" ॥३०॥
परशुराम—"लक्ष्मण के पुरिषान कियेा
पुरसाथर सेा न कह्यो परई ।

वेष बनाइ कियो बनितान को
देखत केशव ह्यो हरई ॥
क्रूर कुठार निहारि तजै फल
ताको यहै जो हियो जरई ॥
आजु ते केवल तोको महाधिक
क्षत्रिन पै जो दया करई ॥ ३१ ।

गोतिका छंद

तब एक विंशति वेर मैं बिन छत्र की पृथिवी रची ।
बहु कुंड शोणित सों भरे पितु तर्पणादि क्रिया सची ॥
उबरे जे क्षत्रिय क्षुद्र भूतल शोधि सँहारिहौं ।
अब बाल वृद्ध न ज्वान छाँड़हुँ धर्म निर्दय पारिहौं" ॥ ३२ ॥

दोहा

राम—"भृगुकुल-कमल-दिनेश सुनि, ज्योति सकल संसार ।
क्यों चलिहै इन शिशुन पै, डारत हौ यश भार" ॥३३॥

सोरठा

परशुराम—" राम सुबंधु सँभारि, छोड़त हौं शर प्राणहर ।
देहु हथ्यारन डारि, हाथ समेतिन वेगि दै" ॥ ३४ ॥

पद्धटिका छंद

राम—"सुनि सकल लोक गुरु जामदग्नि ।
तप विशिष अशेषन की जो अग्नि ॥

सब विशिष छाँड़ि सहिहौं अखंड।
हर धनुष करचो निज खंड खंड" ॥ ३५ ॥

सवैया

परशुराम—"बाण हमारेन के तनत्राण
विचारि विचारि विरंचि करे हैं।
गोकुल ब्राह्मण नारि नपुंसक
जे जग दीन सुभाव भरे हैं॥
राम कहा करिहौ तिनको
तुम बालक देव अदेव डरे हैं।
गाधि के नंद तिहारे गुरू
जितने ऋषिवेष किए उबरे हैं"॥ ३६ ॥

षट्पद

राम—"भगन भयो हर-धनुष शाल तुमको अब शालै।
वृथा होइ बिधि-सृष्टि ईश आसन ते चालै॥
सकल लोक संहरहु शेष शिर ते घर डारै।
सप्त सिंधु मिलि जाहि होहिं अबही तम भारै॥
अति अमल ज्योति नारायणी कह केशव बुड़ि जाहि बरु।
भृगुनंद सँभारु कुठार मैं कियो शरासनयुक्त शरु" ॥३७॥

स्वागता छंद

राम राम जब कोप करचो जू। लोक लोक भय भूरि भरचो जू।
महादेव तब आपुन आए। रामदेव दोऊ समुझाए॥३८॥

दोहा

महादेव को देखि कै, दोऊ राम विशेष।
कीन्हों परम प्रणाम उन, आशिष दियो अशेष ॥ ३९ ॥

चतुष्पदी

महादेव–"भृगुनंदन सुनिए, मनमहँ गुनिए, रघुनंदन निर्दोषी ॥
निजु ये अविकारी, सब सुखकारी, सबही विधि संतोषी ॥
एकै तुम दोऊ, और न कोऊ, एकै नाम कहायो।
आयुर्बल खूट्यो, धनुष जो टूट्यो, मैं तन मन सुख पायो ॥४०॥

पद्धटिका छंद

तुम अमल अनंत अनादि देव, नहिं वेद बखानत सकल भेव।
सबको समान नहिं बैर नेह, भव भक्तन कारन धरत देह ॥
अब आपनपो पहिचान विप्र, सब करहु आगिलो काज क्षिप्र।"
तब नारायण को धनुष जानि, भृगुनाथ दियो रघुनाथ पानि ॥४१॥

मोटनक छंद

नारायण को धनुबान लियो, ऐंच्यो हँसि देवन मोद कियो।
रघुनाथ कह्यो अब काहि हनो, त्रैलोक्य कँप्यो भय मानि घनो ॥
दिग्देव दहे बहु बात बहे, भूकंप भये गिरिराज ढहे।
आकाश विमान अमान छुये, हा हा सबही यह शब्द रये ॥४२॥

शशिवदना छंद

परशुराम—जग गुरु जान्यो। त्रिभुवन मान्यो ॥
मम गति मारौ। हृदय बिचारौ ॥ ४३ ॥

दोहा

विषयी की ज्यों पुष्पशर, गति को हनत अनंग।
रामदेव त्यों ही किये, परशुराम गति भंग ॥ ४४ ॥

चतुष्पदी छंद

सुरपुर गति मानी, शासन मानी, भृगुपति को सुख भारो ॥
आशिष रस भीने, सब सुख दीने, अब दशकंठहिं मारो ॥४५॥

दोहा

सोवत सीतानाथ के, भृगु मुनि दीन्ही लात।
भृगुकुलपति की गति हरी, मनो सुमिरि वह बात ॥ ४६ ॥

सवैया

ताड़ुका तारि सुबाहु सँहारि कै गौतम नारि के पातक टारे।
चाप हत्यो हर को हँसि कै सब देव अदेव हुते सब हारे ॥
सीतहि ब्याह अभीत चल्यो गिरि गर्व चढ़े भृगुनंद उतारे।
श्री गरुड़ध्वज को धनु लै रघुनंदन अवधपुरी पग धारे ॥ ४७ ॥

(७) पृथ्वीराज-प्रयाण

[१]

जननी हमें सीख अब दीजे।
परम कुपूत तेरो यह ताहि बिदा अब कीजे॥
पूत कपूत होत बहुतै पै होत कुमाता नाहीं।
बरु कुपूत पै अधिक मातु रुचि होतहि रही सदाहीं॥

[२]

करिकै यह भरोस मातु माँगत तुम पै कर जोरे।
छमियो सब अपराध हमारे पुत्र सनेह निहोरे॥

[३]

करके बहुत साध जनमायो बहु आसा करि पोष्यो।
राजछत्र दै मान बढ़ायो सबहि भाँति संतोष्यो॥

[४]

पै या भाग्यहीन ने माता कोउ आसा न पुरायो।
केवल बोझ भयो तुम ऊपर दिन दिन अधिक सतायो॥

[५]

रक्त प्रवाह बहाइ, जीति बहु देस छत्र सिर धारयो।
राज बढ़ावन लोभ मातु हम देशबंधु बहु मारयो॥

[६]

सोइ सब पाप आइ सिर नाच्यो छलियन के छल हाच्यो ।
हाय मातु तुहि दे यवननकर चहत विदेश सिधाच्यो ॥

[७]

परम पवित्र सस्य धन पूरित रत्नमयी सुखदायी ।
जासु अनूप रूप पै सुरगन रहत सदा ललचायी ॥

[८]

रही अनादि काल सों पालित जो आरज भुज छाहीं ।
ताहि अधम अति भाग्यहीन हम राखि सके हठि नाहीं ॥

[९]

मातु बहुत सुख पायो तुम मम पुरषन के आधीना ।
अब वह सुख सपने से ह्वैहैं हाय दैव कह कीना ॥

[१०]

यद्यपि हम सब ही बिधि दोषी लग्यो कलंक हमारे ।
पै निर्दोष मातु सब भाँतिहि जो जय न्याय बिचारे ॥

[११]

अपुनेहिं भाइ बंधु आप ही कैं जो छल औ द्रोहा ।
तो रक्षा ह्वै सकै कौन बिधि जो बिधि ही बुधि मोहा ॥

[१२]

ताहू पै निज भुज प्रताप दुष्टन को दिये भगाई ।
छली चोर छल सों जीते याकी नहिं हमें हँसाई ॥

[१३]

होनहार जो रह्यो भयो अब सोच किये फल नाहीं।
मातु बिदा अब देहु हाय! बिछुरत तुम पदनख छाहीं॥

[१४]

पुण्यभूमि में जन्म हाय अब मरन चल्यो मरुदेसा।
आर्यध्वजा दै शत्रु हाथ में यह अति हाय कलेसा॥

[१५]

अपुने किये कर्म फल भोगन में, कुछ दुख मोहिं नाहीं।
पै जननी तुम भावी दसा, बिचारि हृदय फट जाहीं॥

[१६]

ये देवालय वेदशास्त्र ये यह गो ब्राह्मण पूजा।
यह पवित्रतम धर्म भाव जग में न जासु सम दूजा॥

[१७]

हाय महाद्रोही यवनन कर परि सब कलुषित ह्वैहैं।
पाप ताप पूरित भुवि करिकै घोर यंत्रणा दैहैं॥

[१८]

जाकी विद्या कला और कौशल की छटा लुभाई।
इकटक देखत रहत जगत मोहित ह्वै सुधि बिसराई॥

[१९]

होइ यवन-पद-दलित सोइ सब माटी ही ह्वै जैहैं।
चारहु दिसि मूढ़ता बेबसी कछु दिन माहिं लखैहैं॥

[२०]

जा भारत प्रताप दिसि लखि जब, चख चकचौंधी लागै ।
हाय कहा सेा लुटिहै पदतर सोचतही बुधि भागै ॥

[२१]

ऐसे करत तर्क व्याकुल ह्वै कंठ रुद्ध ह्वै आयो ।
चल काफिर क्या रोता है इक यवन ढकेल सुनायेा ॥

[२२]

गिरत सम्हाल सचेत होइ कर जोरि जननि पग लागी ।
देसबंधु दिसि हेरि बचन बोले आरत रस पागी ॥

[२३]

भैया भैया दे यवनन कर हम तो जात बिदेसा ।
तुम रच्छा करिहेा जहँ लों बस होइ याहि न कलेसा ॥

[२४]

यद्यपि पराधीन भये पै जौ आत्मपनौ न बिसरिहैा ।
धर्म ऐक्य विद्या अनुसरिहेा तो अरि सीस विदरिहैा ॥

[२५]

जैसे भई दसा यह सेा तुम निज नैननहि निहारो ।
दूर बहाइ खोर सो इक ह्वै भारत मातु उबारो ॥

[२६]

जिन भूलौ निज पुरुखन के गौरव की भ्रात कहानी ।
सिमिटि शत्रुबल मेटि उबारो भारत भुवि सुखखानी ॥

[२७]

सुनत बचन यह यवन सैन चहुँ दिसि सों गरजन लागो।
मुसुक बाँधि भारत गौरव को भारत सों लै भागो॥

[२८]

चिर स्वतंत्रता, चिरगौरव, चिरसुख छन माँहि बिलाई।
बाँधि चिरदिन दासत्व-शृंखला भारत भुवि बिलखाई॥

[२९]

दीनबंधु निज विरद सम्हारौ दीन दुखित दुख हारौ।
हे भारत! भुविनाथ!! हाथ गहि भारत भूमि उबारौ॥

(८) भारत-महिमा

[भारत-भारती से]

अतीत खंड

मानस-भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती,
भगवान ! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।
हो भद्रभावोद्भावनी वह भारती हे भगवते!
सीतापते ! सीतापते !! गीतामते ! गीतामते !!
हाँ वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है?
भगवान की भव-भूतियों का यह प्रथम भंडार है,
विधि ने किया नर-सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है॥
शुभ शांतिमय शोभा जहाँ भव बंधनों को काटती,
मृगशावकों को प्रेमपूर्वक सिंहनी थी चाटती।
स्वर्गीय भावों से भरे ऋषि होम करते थे जहाँ,
उन ऋषिगणों से ही हमारा था हुआ उद्भव यहाँ॥
वह ईश नियमों की कभी अवहेलना करते न थे,
सन्मार्ग में चलते हुए वे विघ्न से डरते न थे।
अपने लिए वे दूसरे का हित कभी हरते न थे;
चिंताप्रपूर्ण अशांतिपूर्वक वे कभी मरते न थे॥

हैं वायुमंडल में हमारे गीत अब भी गूँजते,
निर्झर, नदी, सागर, नगर, गिरि, वन सभी हैं कूजते।
देखो, हमारा विश्व में कोई नहीं उपमान था,
नरदेव थे हम, और भारत ? देवलोक समान था॥
ब्राह्मीस्वरूपा जन्मदात्री, ज्ञान-गौरव--शालिनी,
प्रत्यक्ष लक्ष्मीरूपिणी, धन-धान्य-पूर्णा, पालिनी,
दुर्द्धर्ष रुद्राणीस्वरूपा, शत्रु-सृष्टि-लयंकरी,
वह भूमि भारतवर्ष की है भूरि भावों से भरी॥
क्या ही पुनीत प्रभात है ? कैसी चमकती है मही ?
अनुरागिणी ऊषा सभी को कर्म में रत कर रही।
यद्यपि जगाती है हमें भी देर तक प्रतिदिन वही,
पर हम अविध निद्रा निकट सुनते कहाँ उसकी कही ?
गंगादि नदियों के किनारे भीड़ छवि पाने लगी,
मिलकर जल-ध्वनि में गल-ध्वनि अमृत बरसाने लगी।
सस्वर इधर श्रुति-मंत्र-लहरी, उधर जल-लहरी अहा !
तिस पर उमंगों की तरंगें, स्वर्ग में अब क्या रहा ?
देखो कि सबके साथ सबका निष्कपट बर्ताव है,
सबमें परस्पर दीख पड़ता प्रेम का सद्भाव है।
कैसे फलें फूलें भला वे जो न हिल मिलकर रहें ?
वे आर्य्य ही क्या, यदि कभी परिवाद निज मुख से कहें॥
सब देश विद्याप्राप्ति को संतत यहाँ आते रहे,
सुरलोक में भी गीत ऐसे देवगण गाते रहे—

"हैं धन्य भारतवर्ष-वासी, धन्य भारतवर्ष है;
सुरलोक से भी सर्वथा उसका अधिक उत्कर्ष है" ॥
उत्थान के पीछे पतन संभव सदा है सर्वथा,
प्रौढ़त्व के पीछे स्वयं वृद्धत्व होता है यथा।
हा ! किन्तु अवनति भी हमारी है समुन्नति सी बड़ी,
जैसी बढ़ी थी पूर्णिमा वैसी अमावस्या पड़ी ॥
था सार्वभौम अशोक का कैसा प्रताप बढ़ा चढ़ा,
विस्तार जिसके राज्य का था अन्य देशों तक बढ़ा।
थे गुप्तवंशी नृप, न धर्म्मद्वेष जिनको इष्ट था;
तात्पर्य्य, तब भी भूमि पर भारत बहुत उत्कृष्ट था ॥
पर ठीक वैसाही हमारा यह प्रसिद्ध विकाश है—
जैसा कि बुझने के प्रथम बढ़ता प्रदीप-प्रकाश है।
हो बौद्ध लक्ष्यभ्रष्ट सहसा घोर नास्तिक ही रहे,
सँभले न फिर हम आर्य्य भी इस भाँति विषयों में बहे ॥
वह तुच्छ रजवाड़े बने, साम्राज्य सब कट छँट गया;
यों भूरि भागों में हमारा दान भारत बँट गया।
जो एक अनुपम रत्न था परिणत कणों में हो गया,
वह मूल्य और प्रकाश सारा टूटते ही खो गया ॥
क्या थे यवन, पाते न प्रश्रय यदि अधम जयचंद से ?
जयशील पृथ्वीराज हारे अंत में छल छंद से।
हा ! देश का दीपक बुझा, भीषण अँधेरा छा गया,
निज कर्म्म के फलभोग का वह काल आगे आ गया ॥

फिर भी दिखाई देश में जिसने महाराष्ट्रच्छटा—
दुर्घात आलमगीर का भी गर्व जिससे था घटा।
उस छत्रपति शिवराज का है नाम ही लेना अलम्,
है सिंह-परिचय के लिए बस, 'सिंह' कह देना अलम्॥
शासन किसी पर जाति का चाहे विवेक-विशिष्ट हो,
संभव नहीं है किंतु जो सर्वांश में वह इष्ट हो।
यह सत्य है तो भी बृटिश शासन हमें सम्मान्य है,
वह सुव्यवस्थित है तथा आशा--प्रपूर्ण, वदान्य है॥

वर्तमान खंड

भारत कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो!
हे पुण्यभूमि! कहाँ गई है वह तुम्हारी श्री कहो?
अब कमल क्या जल तक नहीं सर मध्य केवल पंक है;
वह राजराज कुवेर अब हा! रंक का भी रंक है॥
होती नहीं है कृषि यहाँ पूरी तरह से अब कभी,
यद्यपि शुभाशा चित्त में होती हमें है जब कभी।
पाला कहीं, ओले कहीं लगता कहीं कुछ रोग है,
पहले शुभाशा फिर निराशा, देव! कैसा योग है?
जो दिव्य दर्शन शास्त्र की विख्यात है जन्मस्थली,
पहले जहाँ पर अंकुरित हो सभ्यता फूली फली।
संगीत, कविता, शिल्प की जननी वही भारत मही,
होगी किसे स्पर्धा कहे जो पर-मुखापेक्षी रही?
अपमान हाय सरस्वती का कर रहे हम लोग हैं,

पर साथ ही इस धृष्टता का पा रहे फल भोग हैं।
निज देवता के कोप में कल्याण किसका है भला,
हम मोहमुग्ध फँसा रहे हैं आप ही अपना गला!
हा! आर्य्य संतति आज कैसी अंध और अशक्त है,
पानी हुआ क्या अब हमारी नाड़ियों का रक्त है?
संसार में हमने किया बस एक ही यह काम है—
निज पूर्वजों का सब तरह हमने डुबोया नाम है।
हा दीनबंधो! क्या हमारा नाम ही मिट जायगा,
अब फिर कृपा-कण भी न क्या भारत तुम्हारा पायगा?
हा राम! हा! हा! कृष्ण! हा! हा! नाथ! हा रक्षा करो,
मनुजत्व दो हमको दयामय! दुःख दुर्बलता हरो॥

भविष्यत् खंड

सौ सौ निराशाएँ रहें विश्वास यह दृढ़ मूल है—
इस आत्म-लीला-भूमि को वह विभु न सकता भूल है।
अनुकूल अवसर पर दयामय फिर दया दिखलायँगे;
वे दिन यहाँ फिर आयँगे, फिर आयँगे, फिर आयँगे॥
आत्मावलंबन ही हमारी मनुजता का मर्म्म हो,
षड्रिपु समर के हित सतत चारित्र्यरूपी वर्म्म हो।
भीतर अलौकिक भाव हो, बाहर जगत का कर्म्म हो,
प्रभुभक्ति, परहित और निश्छल नीति हो ध्रुव धर्म्म हो॥